सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

विशेषांक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 55 : अंक : 08
नवम्बर 2022

प्रकाशन तिथि : 01.11.2022
मूल्य - एक प्रति : 22/-, द्विवार्षिक : 400/-

अमृतकण

परात्परतरं ध्येयं नित्यमानन्दकारकम्
हृदयाकाशमध्यस्थं शुद्धस्फटिकसन्निभम्

परे से अत्यन्त परे, ध्यान करने योग्य, नित्य आनन्द करने वाले, हृदय आकाश के मध्य स्थित, शुद्ध स्फटिक मणि के समान कांति वाले।

स्फटिकप्रतिमारूपं दृश्यते दर्पणे यथा
तथा ज्ञानं चिदाकारमानन्दं सोऽहमित्युत

जिस प्रकार स्फटिक मणि प्रतिमा रूप से दर्पण में दिखाई देती है उसी आत्मा चेतन आकार में आनन्द स्वरूप है : वह आनन्द तो मैं ही हूँ।

अगोचरं तथाऽगम्यं रूपनामादिवर्जितम्
निःशब्दंतु विजानीयात् स्वभावो ब्रह्म पार्वति

हे पार्वती ! इन्द्रियों का अविषय अगम्य, रूप नाम आदि से रहित, शब्द रहित को ब्रह्म का स्वभाव जाने। अर्थात् मन का निर्विकार मौन भाव ही ब्रह्म है। जैसे गूंगे का स्वाद।

यथा निजस्वभावेन कर्पूरकुंकुमादिषु
शीतोष्णादिस्वभावेन तथा ब्रह्म च शाश्वतम्

जिस प्रकार कपूर कुंकुम के अपने अपने स्वभाव शीतोष्णादि हैं उसी प्रकार ब्रह्म का शाश्वतता ही स्वभाव है।

स्वयंसर्वमयो भूत्वा स्थातव्यंत्र कुत्रचित्
कीटभ्रमरवत्तत्र ध्यानं भवति तादृशम्

सर्वमय होकर जहाँ तहाँ स्वयं स्थित हो जैसे कीट सदा भ्रमर का ही ध्यान करता है उसी प्रकार सर्वत्र ब्रह्म का ही ध्यान होता है।

■■■

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 55 नवम्बर 2022 अंक : 08

तं दुर्दशं गूढ़ मनु प्रविष्टं,
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्म येगाधिगमेन देवं,
मत्वा धीरों हर्ष शोकौ जहाति।।

अर्थात्

अर्थात् जो योग माया के पर्दे में छिपा सर्वव्यापी, सब के हृदय रूप गुहा में स्थित संसार रूप गहन बन में रहने वाला सनातन है। ऐसे उस कठिनता से देखे जाने वाले परमात्म देव को शुद्धि बुद्धि युक्त धीर साधक अध्यात्म योग की प्राप्ति के द्वारा समझकर हर्ष और शोक को त्याग देता है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख- *योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज* 3
2. सम्पादकीय 9
3. श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा- *डॉ. विजय सिंह* 13
4. योगी अगड़धन्ना की कहानी- *जगदीश राए बंसल* 16
5. पातिव्रत और योग- *श्रीमती सरिता भारद्वाज* 20
6. गुण ही गुणों में वर्तते हैं, मैं हूँ अकर्ता- *मनमोहन कृष्ण त्रिखा* 29
7. ध्यानयोग एवं आत्मसाक्षात्कार- *श्री सूरज प्रकाश शर्मा* 33
8. माया का अवरण हटा दे- *श्री बालकृष्ण जी गर्ग* 38
9. सिद्ध- योगियों का पावन-जीवन पथ-प्रदीप है- *अलगूराय जी शास्त्री* 39

एक प्रति	: रु. 22.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 400.00
आजीवन (10 वर्षीय कोपल)	: रु. 1000.00

हमारा विशेष लेख-

योग साधक के लिए अनुपालनीय नियम

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो! एक योगी जो अपने को उत्थान की ओर ले जाना चाहता है उसके लिए कुछ आवश्यक नियम भी होते हैं। उन नियमों पर चलकर ही वह अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है। काल चक्र, जग चक्र और युग चक्र को एक साथ घुमाने वाले मेरे तुम्हारे और सब प्राणियों के आत्मा श्री कृष्ण चन्द्र ने गीता में उन नियमों का संकेत दिया है। मैं अपने हर योग प्रचार कार्यक्रम में भगवान के इन वचनों को दोहराया करता हूँ। वे वचन हैं–

''विविक्त सेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमान सः
ध्यान योग परो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।
अहंकार बलं दर्पं काम क्रोधं परिग्रहम
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।''

अर्थात् भगवान् ने साधक के लिए पहली बात कही है 'विविक्त सेवी' एकान्त में रहे। एकान्त में किसको रहना चाहिये ?एकान्त में उसे रहना चाहिये जिसका ध्यान लगता हो, जिसकी अन्तर्मुखी वृत्ति बन गई हो। सिद्धान्त की बात एक और भी है–

'वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्,
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि य प्रवृवते
निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनम्।

अर्थात् जो रागी लोग हैं या विषयी व्यक्ति हैं, उनको वन में भी विषय लग जाता है किन्तु जो निन्दित कर्म में प्रवृत नहीं होता, अपनी पाँचों इन्द्रियों को संयमित रखता है तथा जिसका विषयों के प्रति राग छूट गया है उसके लिये घर ही तपोवन है। इसलिए जो विषयी लोग हैं, उनको समाज में ही रहना चाहिए।

'लघ्वाशी' हल्का आहार करना चाहिये ताकि आलस्य निद्रा न सताये। **'सतवाक्कायमान सः'** योगी को अपनी वाणी पर नियन्त्रण रखना चाहिए। कम बोलना चाहिये, सत्य बोलना चाहिये। 'यतकाय' शरीर पर नियन्त्रण हो, प्रत्येक चेष्टा युक्त व संयमित हो **'सतमानसः'** अपने मन पर नियन्त्रण रखे। योगी ध्यान करता–करता ऊँची स्थिति को पा जाता है। उस समय यदि मन पर नियन्त्रण नहीं है तो वह किसी का भला करेगा, किसी का बुरा करेगा। मैं तुम्हें इससे सम्बन्धित एक घटना सुनाता हूँ। अमृतसर में दो पढ़ने वाले लड़के थे। उनमें से एक श्री प्रभु जी के चरणों में आ गया था। दीक्षा ले ली। योगी ध्यानी बन गया। दूसरा यूँ ही भटकता था, प्रभु जी का निन्दक ही था। उसने उस ध्यानी लड़के की पुस्तकों का ट्रंक चुरा लिया। समझाने पर भी वह अपनी गलती को नहीं मानता था। ध्यानी लड़का जब ध्यान में बैठता था तो वह देखता था कि उसका तीसरा नेत्र खुल गया है और उस लड़के पर क्रोध की दृष्टि जाती है। उसने ध्यान से उठकर के यह बात श्री प्रभु जी

को बताई। प्रभु जी ने कहा तुम आठ दिन तक ध्यान में नहीं बैठना नहीं तो उसका अनिष्ट हो जायेगा। वह आठ दिन तक ध्यान में नहीं बैठा। आठवें दिन उसने प्रभु जी से ध्यान में बैठने के लिए पूछा–प्रभुजी अन्य व्यक्तियों के साथ बातचीत में व्यस्त थे। उन्होंने सरल भाव से कहा–बैठ जाओ। वह लड़का ध्यान में बैठ गया! कई दिनों का ध्यान प्रवाह रुका हुआ था। मन एकाग्र होते ही वह लड़का सामने दिखाई दिया। बड़ी मद्दी हरकतें करता हुआ दिखाई दिया। इससे उसका क्रोध और बढ़ गया फिर इसने देखा कि उसके तीसरे नेत्र से एक चिन्गारी सी निकली और उस लड़के पर पड़ गई। यह दृश्य दिखाई देने के बाद वह लड़का ध्यान से उठ गया और श्री प्रभु जी के पास जाकर कहने लगा प्रभु जी! आज तो इस प्रकार से हो गया। प्रभु जी कहने लगे "बस, ठीक है, हम तुम्हें शक्ति देते रहें और तुम दुनिया का अनिष्ट करते रहो। हमने तुमसे कहा था कि ध्यान में नहीं बैठना फिर क्यों बैठे?" उस विचारे ने पूछ तो लिया था। खैर! हम लोग उस लड़के को देखने के लिए गये। वहाँ जाकर देखा वह लड़का पागल हो गया था उसका दिमाग खराब हो गया। उसने अपनी सारी पुस्तकों को आग लगा दी थी, फिर उसने अपने कपड़े भी जला दिये, अपने कमरे में भी आग लगाने जा रहा था। किन्तु आस पड़ोसियों ने उसे पकड़ लिया। वे लोग उसे पागल खाने ले जा रहे थे। हमने उसे ले जाने नहीं दिया। उसे नेति कराई, नाक से दूध पिलाया सिर को मला, मालिश आदि कराई, वह थोड़ा ठीक हो गया। इसलिये भगवान का आदेश है कि मन पर कन्ट्रोल रखो। मन से भी किसी का अहित चिन्तन न करें। **'ध्यान योग परो नित्यम्'** नित्य ध्यानयोग का अभ्यास करो। मैं तुम्हें रोज–रोज कहता हूँ प्रात: 5 बजे से 7 बजे तक अपने ध्यानाभ्यास में अवश्य बैठा करो। रात्रि को भी सोने से पूर्व कुछ देर बैठ कर मन्त्र जाप करना चाहिये। फिर मन्त्र जाप करते–करते ही शवासन में लेट जाना चाहिये। शवासन को श्री प्रभु जी अमृतासन भी कहते थे। शवासन में लेट कर अभ्यास करने के लिए श्री प्रभु जी स्त्रियों को भी कहा करते थे। वैसे तो आमतौर पर रात्रि में बाँये करवट सोना चाहिए। क्योंकि, रात्रि में वात कफ की अधिकता रहती है इसलिए दाँये स्वर–पिंगला को चलाना चाहिये। किन्तु साधना की दृष्टि से शवासन में ही लेट कर अभ्यास करना चाहिए। शवासन में सुषुम्ना चलती है। जब सुषुम्ना चलने लगे–अर्थात् जब दोनों नासिका से श्वास बराबर चल रहा हो तो कुण्डलिनी में प्रबोध होता है, मन की एकाग्रता बनती है। इस प्रकार शवासन से लेटने पर वृत्ति एकाग्र रहेगी, अच्छे अनुभव होंगे, भजन चलता रहेगा। ऐसी स्थिति के लिए ही कहा गया है–

'सोना तो सबसे भला जो कोई जाने सोया
अन्तर लौ लागी रहे सहज ही सुमिरन होया।'

ध्यानाभ्यास से जो अपने पापों का क्षय कर देता है अथवा गुरु देव की अनुकम्पा को प्राप्त कर लेता है, वह व्यक्ति प्राक्तन घोर कर्म विपाक को शरीर रहते रहते भोग करके अन्तिम काल में शुद्ध हो जाता है उसके प्राण निकलने में कोई कष्ट नहीं होता। मैं अपने ऐसे बहुत से ध्यानी बच्चों का उदाहरण देता ही रहता हूँ। ध्यान के प्रभाव से, तप के प्रभाव से, स्वाध्याय के प्रभाव से उनको अन्तिम समय में कोई कष्ट नहीं हुआ और वे सद्गति भाजन बन गये। **'अस्तु–वैराग्यम् समुपाश्रित:'** साधक को चाहिये कि वे अपने मन में वैराग्य को धारण करे। संसार की अनित्यता का बार–बार विचार करना चाहिये और किसी वस्तु से, व्यक्ति से राग नहीं करना चाहिये। श्री प्रभु जी कहा करते थे–जो तुम्हारा मन ले ले, वही तुम्हारा वैरी है। वह तुम्हारे मन की शक्ति को खींचता रहेगा और जैसा वह है वैसे ही तुम्हें बना देगा। इसलिये साधक को सावधान रहना चाहिये। किसी में

आसक्ति नहीं बढ़ानी चाहिये।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् : साधक अहंकार को छोड़ दे। मनुष्य में कई प्रकार का अहंकार होता है जैसे कर्म करने का अहंकार, बल का अहंकार, धन का अहंकार, विद्या का अहंकार आदि–आदि सब अनिष्ट अहंकार के कारण होता है। इसलिये बल–किसी भी प्रकार का बल हो, उसका दुरुपयोग न करें। **दर्पं**–मिथ्याभिमान न करे। **कामम्**–अनेक प्रकार की कामनायें तृष्णायें होती हैं, उनका त्याग करें। **क्रोधम्**–किसी पर क्रोध न करें। क्रोध करने से आन्तरिक शक्ति भी क्षीण होती है और शारीरिक शक्ति भी क्षीण होती है। **परिग्रहम्**–आवश्यकता से अधिक वस्तु का संग्रह न करे। साधक जीवनोपयोगी कम से कम वस्तु अपने पास रखे। इसलिये परिग्रह न करे। **निर्ममः**–अर्थात् ममता रहित बने। किसी वस्तु या व्यक्ति में आसक्ति न रखे। यदि साधक भगवान के उपर्युक्त आदेश को मानकर चलता है तो वह परम शांति को पा जाता है और ब्रह्मत्व को पा जाता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

भगवान पतंजलि देव ने चित्त को प्रसन्न रखने का उपाय योग दर्शन में बताया है। यदि ये चार बातें साधक अपने अन्दर कायम कर लें, तो उसकी समाधि में विघ्न नहीं पड़ता चित्त प्रफुल्लित रहता है। वे चार साधना हैं–

'मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्'

इसका अर्थ यह है साधक सुखी व्यक्ति से मैत्री की भावना, सुहृदयता का व्यवहार रखे। दुःखी प्राणियों के प्रति करुणा का भाव रखे। दया दुखियों पर करें जो पुण्यात्मा हैं साधु हैं, उन को देखकर मन में आनन्द का अनुभव करें और जो दुराचारी या पापी व्यक्ति हैं, उनके प्रति उदासीन भाव रखें। इस प्रकार के भाव लाने से योगी के मन में कोई विक्षेप नहीं आता है, उसका चित्त प्रसन्न रहता है। मैं कभी–कभी तुम्हें इस बात का संकेत कर दिया करता हूँ कि तुम्हें अपनी दिनचर्या किस प्रकार की रखनी चाहिए। देखो! साधक को 'युक्ताहार विहार' का सिद्धान्त हमेशा अपने सामने रखना चाहिए। रात्रि को मंत्र जाप करते–करते दस बजे तक सो जाना चाहिए। सुबह ठीक चार बजे उठ जाना चाहिए। उठने के बाद शौच जाना चाहिए। यदि कोष्टबद्धता रहती है, तो नियमित गर्म पानी में नींबू व नमक डाल कर पीना चाहिए। शौच से निवृत्त होकर वातूनादि से दाँत व जीभ ठीक प्रकार से साफ करने चाहिये। नहाने के लिए ठण्डे पानी का प्रयोग उत्तम रहता है। इससे रोमकूप खुल जाते हैं तत्पश्चात् खद्दर के खुरदुरे अगोछे से शरीर को रगड़–रगड़ कर पोंछना चाहिए। इसके बाद थोड़ा जीवन तत्व साधन अवश्य करना चाहिये। पाँच बजे तक इन कार्यों से निवृत्त होकर आनन्द कन्द श्री प्रभु जी की आरती करें। उसके पश्चात् मंत्र जाप व ध्यान के लिए बैठ जायें। मंत्र को श्वास–प्रश्वास से जपना चाहिये। यदि इसमें नींद आने लगे तो जीभ से बोल–बोल कर भी जप कर सकते हो। मेरुदण्ड को सीधा रखो ब्रह्मचर्य पूर्वक छः महीने तक शरीर सीधा रख कर अभ्यास करोगे तो ध्यान लगेगा ही लगेगा। पहले हमारा नियम था जो छः महीने तक तीन घण्टे बैठ लेता था, उसे ही दीक्षा देते थे और छः महीने तक जो छः छः घण्टे बैठता था, तब शक्तिपात करते थे। अब भीड़भाड़ के कारण यह नियम चल नहीं पाता है। जीवन तत्व एवं योगासन करने से धातु सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है। जिसमें साधक ओज तेज से भर जाता है। इसलिए नियमित योगासन अथवा जीवन तत्व आवश्यक है। साधना के विषय में पतंजलि देव का सूत्र याद रखना चाहिए–

'स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़ भूमिः।'

अर्थात् साधना को लम्बे समय तक करते रहना चाहिए। साल छः महीने में ही उकताना नहीं चाहिए। **नैरन्तर्य**–निरन्तर लगाकर अर्थात् प्रतिदिन करे। **'सत्कारासेवितो'** सत्कार पूर्वक, आदरपूर्वक करे। यही साधन तुम्हें दुःखों से छुड़ा देगा, यही मोक्ष प्रदान करेगा, ऐसी भावना रखते हुए साधना करनी चाहिए तब साधना दृढ़ बनती है। एक और भी बात है, वह है–**तीव्र संवेगानामासन्नः** जो गाढ़ी लगन के साथ साधना करते हैं वह अपने लक्ष्य को जल्दी पाते हैं और जो साधना में शिथिलता बरतते हैं, उन्हें देर में सफलता मिलती है। स्वल्पाहार करोगे, तप करोगे अर्थात् सर्दी–गर्मी, भूख प्यास सहन करते हुये साधना करोगे, तो श्री प्रभु जी की कृपा से ध्यान लगने लगेगा। मैंने तुम्हें बताया था कि ध्यानियों के प्रारब्ध बदल जाया करते हैं। यदि गुरुदेव की कृपा से ध्यान लगता है तो ध्यानियों का भी रजिस्ट्रेशन हो जाता है। अर्थात् मनुष्य जन्म मिलेगा अथवा स्वर्गादि लोकों में जायेगा। निम्न योनियों में नहीं जा सकता। साधकों को एक डायरी रखनी चाहिए। प्रातः संकल्प करो। आज दिन भर में मैं किसी को दुःख नहीं दूँगा। अपनी चेष्टाओं और मन पर नियन्त्रण रखूँगा आदि। फिर शाम को सोने से पहले अपनी पूरी दिनचर्या को देखो, आज कहीं गलत काम तो नहीं हो गया, साधना में कितना मन लगा इत्यादि बातों पर विचार कर अपने दुर्गुणों को दूर करने का प्रयास करो।

मेरे बच्चे अधिकांश घर–गृहस्थी वाले हैं। मैं तो अपने हर गृहस्थी बच्चे को एक बात जोर देकर कहा करता हूँ कि पति–पत्नी में परस्पर प्रेम रहना चाहिये। दोनों को एक प्राण होकर रहना चाहिये, इससे साधना में किसी प्रकार का विघ्न नहीं आता। मनु महाराज का वचन है–

संतुष्टो भार्यया भर्त्ता, भार्या भर्त्ता तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं सर्वम् तद् रोचते गृहम्।।

अर्थात् जिस परिवार में पत्नी से पति खुश रहता है और पति से पत्नी प्रसन्न रहती है, तो वहाँ सब प्रकार से सुख सम्पत्ति का वास रहता है, लक्ष्मी बरसती है और किसी प्रकार की बीमारी नहीं आती तथा उत्तम संतान की प्राप्ति होती है। किन्तु, घर में यदि रोज कलह रहता है, द्वन्द्वमचता है तो निश्चित जान लो कि दरिद्रता आयेगी, बीमारियाँ बढ़ेंगी और सन्तान भी अच्छी नहीं होगी। इसलिए हर गृहस्थी साधक को परस्पर प्रेम से रहना चाहिये।

योग साधकों को ध्यानाभ्यास के साथ–साथ यम नियमादि का भी पूरा–पूरा पालन करना चाहिये! उन्हें यह भी नहीं सोचना चाहिये कि पहले हम यम–नियम का ही पालन कर लेंगे, फिर ध्यानाभ्यास में बैठेंगे। यम नियमादि जो योग के पाँच बहिरंग साधन हैं, उनमें आँख बन्द करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनमें अपने व्यवहार में यम–नियमादि को अपनाना पड़ता है। मैंने तुम्हें कई बार यह बताया है कि जो यम–नियमों का पालन नहीं करता और जिसने गुरुदेव के थपेड़े खाकर साधना नहीं की, उसका पतन हो जाया करता है। योग के एक अंग का ही यदि ठीक प्रकार से पालन हो जाये, तो वह एक अंग ही हमें समाधि द्वार तक पहुँचा देता है। यम नियमों में सर्वप्रथम स्थान अहिंसा का है। योगी को **'सर्वभूत हितेरताः'** की भावना से युक्त होकर मन, वचन एवं कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिए। वस्तुतः अहिंसा की पूरी–पूरी प्रतिष्ठा तो योगी को समाधि मिल जाने पर ही होती है। जब तक योगी **'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि'** की स्थिति में नहीं पहुँच जाता अथवा **'शुनि चैव श्वपाके च पण्डितः समदर्शिनः'** के सिद्धान्तानुसार सब प्राणियों में आत्मदर्शन नहीं कर लेता, तब तक कोई भी पूर्ण रूप में अहिंसक नहीं हो पाता।

अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाने पर, हिंसक प्राणियों में भी अहिंसा भाव का उदय हो जाता है। मुझे एक घटना याद आई है। एक बार आनन्दकन्द श्री प्रभुजी अपने कुछ शिष्यों के साथ ऋषिकेश से आगे ब्रह्मपुरी के जंगल में घूमने गये। श्री मुल्खराज जी महाराज भी उनके साथ थे, उन दिनों उनकी तुरीय स्थिति बनी हुई थी। घूमते–घूमते अचानक एक बाघ निकल आया। सब लोग डरने लगे। श्री प्रभु जी ने अभयदान दिया। सभी शांत खड़े रहे। ज्यों ही वह बाघ श्री मुल्खराज जी के समीप आया, वह पूँछ हिलाने लगा।

श्री मुल्खराज जी ने उसके सिर पर हाथ फेर कर प्यार किया। थोड़ी देर में वह अपने आप दूर चला गया। इसी का नाम है **'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः'**।

अहिंसा के बाद सत्य दूसरा यम है। इस व्रत का भी पालन करना बहुत आवश्यक है जो व्यक्ति पूर्णतया सत्यवादी हो जाता है, उसकी वाणी में ताकत आ जाती है। योगदर्शन में सत्य व्रत पालन करने का फल बताया है–**''सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्''** सत्य प्रतिष्ठा से योगी की वाणी क्रियाफलवती हो जाती है। **'अमोघाऽस्यवाक्भवति'** की स्थिति आ जाती है। वह अमोघ वाणी वाला बन जाता है और धीरे–धीरे वह ऋतम्भरा प्रज्ञा तक भी पहुँच जाता है। मैं तुम्हें अपने एक गुरु भाई का उदाहरण देता हूँ। (यह घटना गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की अपनी आप बीती घटना है। गुरुदेव जी ऐसे दृष्टांत समझाते हुए अपनी ही घटनायें बताते थे किन्तु अपना नाम नहीं आने देते थे) वह गुरु भाई अपने मुख से जो कह दिया करते थे, वह पूर्णतया सत्य होता था। सत्य बोलने का यह पवित्र व्रत उसे बाल्यकाल से ही, उनके पिता के द्वारा दृढ़ बना दिया गया था। एक बार वे योग प्रचार करते हुए रोहतक जिला में किसी गाँव में गये। वहाँ पर एक ब्राह्मण बालक को भूतोन्माद की बीमारी लगी हुई थी। उसका इलाज उन्होंने अपनी मानसिक शक्ति से किया और उसे आराम हो गया। इसके फलस्वरूप इस गाँव में उनके सत्संग का काफी प्रचार हो गया। उस गाँव में वह महात्मा दस पन्द्रह दिन तक रहे। इसके बाद उनका कार्यक्रम किसी दूसरे स्थान में निश्चित हो चुका था।

निर्धारित दिन में उन्हें दिन की गाड़ी पकड़नी थी। स्टेशन वहाँ से पाँच–छः किलोमीटर दूर था। महात्मा जी गाड़ी पकड़ने के लिए चलने वाले थे कि अचानक वर्षा शुरू हो गई ओले पड़ने लगे। सत्संगियों ने कहा–महाराज! ऐसे में जाना तो अत्यन्त कठिन है। आप आज का कार्यक्रम स्थगित कर दें। माघ का महीना था। महात्मा जी सत्यवादी थे। अतः अपने वचन की रक्षा के लिए ऐसी स्थिति में भी चलने को तैयार हो गये। सवारी भी कोई जा नहीं सकती थी। महात्मा जी ने अपने सत्संगियों से कहा कि तुम हमारा बिस्तर और शेष सामान बाद में पहुँचा देना। अपने वचन का पालन करने के लिए वर्षा में ही एक छाता लेकर वे चल पड़े। सभी गाँव वालों को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि महात्मा जी आधा फर्लांग भी नहीं गये थे कि वर्षा रुक गई। बादल हट गये आकाश स्वच्छ हो गया। सत्संगी भी उनके पीछे सामान लेकर चल पड़े। उनके सत्य संकल्प के कारण वे ठीक समय पर पहुँचे और गाड़ी पकड़ ली। वह महात्मा जी की सत्य संकल्पता का ही परिणाम था। सत्य वादन के एक साल के अनवरत अभ्यास करने से योगी को वाक्सिद्धि स्वतः प्राप्त हो जाती है। किन्तु इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि कटु सत्य भी न बोले। कटु सत्य में अनेक प्रकार की हानियाँ निहित रहा करती हैं। सत्यवादी व्यक्ति यदि साथ में ध्यान योगी भी है तो उसके लिये बुद्धि का आलोक खुल जाता है, उसे स्फुट प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है। साधक के लिये ब्रह्मचर्य का व्रत का पालन तो आवश्यक है ही–

'ब्रह्मचारी विनयेषु शक्तिमाधातुम् समर्थो भवति।'

ब्रह्मचारी अपने शिष्यों पर शक्तिपात कर सकता है अणिमादि सिद्धियाँ ब्रह्मचारी को सहज ही मिल जाती हैं। इसलिये साधक को अपनी इन्द्रियों पर निग्रह रखना चाहिये, यह बहुत बड़ा तप है। साधक को अस्तेय व्रत का भी पालन करना चाहिये। 'अस्तेय' का अर्थ है मन से चोरी का भाव निकाल देना। इस भाव की प्रतिष्ठा हो जाने पर **'अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्'** अर्थात् योगी के सम्मुख सब रतन अपने आप उपस्थित हो जाया करते हैं। अपरिग्रह का पालन भी जरूरी है। अपनी धन सम्पत्ति में आसक्ति का न रखना अपरिग्रह कहलाता है। अपरिग्रह से संतोष मिलता है। इस व्रत के स्थैर्य से **'जन्मकथान्तसंबोधः'** आगे पीछे जन्म की बातें याद रहने वाली है। जिला मैनपुरी में हमारा एक शिष्य रघुनन्दन लाल शास्त्री है। उनकी एक लड़की है। वह पिछले जन्म में रेल के नीचे कट कर मर गई थी। पिछले जन्म में मेहतर कुल में उसका जन्म हुआ था। उसके पति और घर वाले उसे बहुत मारते पीटते थे। इसलिए एक दिन उस लड़की ने आत्म हत्या कर ली। इस लड़की को इस जन्म में भी पूर्व जन्म की सारी बातें याद हैं। लोक में भी ऐसी बातें कभी–कभी घट जाती हैं। किन्तु यह योग की बात नहीं है। इस प्रकार से ये पाँच यम हैं। इसमें से यदि एक की भी साधना हो गई तो साधक मुक्ति द्वार तक पहुँच सकता है। यमों के साथ–साथ नियमों का भी पालन करना चाहिये। पहला नियम शौच है। यह दो प्रकार का होता है एक बाहर का दूसरा भीतर का। शरीर वस्त्र आदि को स्वच्छ व शुद्ध रखना बाह्य शौच है। शुभ भावों से अन्तःकरण को पवित्र रखना भीतरी शुद्धि है। अन्तःकरण शुद्धि के बिना, पर दर्शन नहीं हो सकता। संतोष का भी अपना महत्व है। इसी प्रकार से तप और स्वाध्याय भी क्रिया योग के अन्तर्गत आते हैं–ये दोनों अन्तःकरण को पवित्र बनाने वाले उत्तम साधन हैं। **'तपसा चीयते ब्रह्म'** तप के द्वारा ही ब्रह्म दर्शन होता है। स्वाध्याय से इष्ट देव सिद्धि एवं ऋषियों के दर्शन संभव होते हैं। इस प्रकार से तप व स्वाध्याय को बढ़ाता हुआ साधक ईश्वर प्रणिधान की ओर निकल जाता है। सतोगुण के विकास होने पर ईश्वर प्रणिधान् अर्थात् आत्म समर्पण होता है।

साधक को अपना आचार विचार ठीक रखना चाहिये। **'आचारहीनं न पुनन्तिवेदाः'** अर्थात् आचार हीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। आहार विहार योगी का युक्त होना चाहिए।

गीता में भगवान का आदेश है–

'युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

अधिक खाने अथवा बिल्कुल न खाने से योग सिद्ध नहीं होता। कर्मों के प्रति भी चेष्टा युक्त होना चाहिए। अनावश्यक चपलता ठीक नहीं होती। शरीर को चंचल रखने से मन का भी चचल रहने का स्वभाव बढ़ जाता है। समय पर सोना, समय पर जागना उचित है। इस प्रकार से अपनी नियमानुवर्तिता का पालन करने से योग समस्त दुःखों का हरण करने वाला बन जाता है।

साधक को अपने आप को हर समय व्यस्त (निरत) रखना चाहिये। चलते फिरते उठते–बैठते गुरु मंत्र का जाप करते रहना चाहिये। जो ऐसा करेंगे, श्री प्रभु जी उनकी अवश्य सहायता करेंगे।

बार–बार आशीर्वाद।

सम्पादकीय-

मृत्यु का दुःख एवं बचाव/परिहार

आचार्य (डॉ०) दामलाल शर्मा

मृत्यु आयु वाले की ही होती है। जीव जिस क्षण माँ के उदर से निकलकर बाहर आता है वहाँ से ही उसका जीवन प्रारम्भ होता है। जिस दिन अन्तिम सांस लेता है उसे मृत्यु कहते हैं। जन्म और मरण के बीच की अवधि को आयु कहा जाता है। जीवों का शरीर पाँच भौतिक है। सांस की प्रक्रिया बन्द होते ही दो घण्टे बाद वह गलने लग जाता है सड़ने लग जाता है। मृत्यु को ही देहत्याग, देहावसान आदि नाम से पुकारा जाता है।

योग दर्शन के अनुसार जीव को भिन्न-भिन्न योनि, आयु और जीवन में सुख दुःख रूप भोग उसके पुण्य-पाप के अनुसार ही मिलते हैं। भगवान् पतंजलि जी ने एक सूत्र दिया है ' सतिमूले तद्विपाको जात्युर्भोगः ' अर्थात् अविद्यादि क्लेशों के रहते रहते जीव को जाति अर्थात् योनि, आयु तथा सुख-दुःख मिलते हैं। मतलब स्पष्ट है कि पुण्य-पाप ही इन सब के कारण हैं। गीता में भगवान कहते हैं-

नादत्ते कस्यचित पापं न चैव सुकृतंविभुः

(गीता 5/15)

अर्थात् भगवान किसी के पाप-पुण्य से कोई वास्ता नहीं रखता। जीव इसमें स्वतन्त्र है। जैसा कि गीता में कहा भी गया है।

कमण्येवाधि कास्ते मा फलेषु कदाचन

(गीता 2/47)

अर्थात् मनुष्य का कर्म करने में ही पूर्ण अधिकार है किन्तु फल भोगने में वह स्वतन्त्र नही है। मनुष्य को कर्म या पुरुषार्थ करने की स्वतन्त्रता है इसलिए योग वाशिष्ट आदि ग्रन्थों में पुरुषार्थ करने पर बल दिया है जिस के द्वारा वह अपने भाग्य या प्रारब्ध को बदल सकता है।

' मृत्यु ' शब्द से ही मनुष्य को भय लगने लगता है। योग दर्शन में इसे ' अभिनिवेश ' नाम के क्लेश के रूप में वर्णित किया है।

स्वरस वाही विदुषोऽपि तथारुढोऽभिनिवेशः।

यो. सूत्र 2/9

संस्कार से ही भय व्याप्त रहता है लोगों में, बड़े-बड़े विद्वानों को भी यह भय बना रहता है। दुनिया में बहुत से मनीषियों ने मृत्यु के रहस्य पर काम किये हैं ग्रन्थ लिखे हैं। मेरे एक गुरु भाई दतिया निवासी राजेन्द्र तिवारी हैं उन्होंने भी एक पुस्तक लिखी है इसमें उन्होंने मृत्यु विषयक खोज की है। वे लिखते हैं-

संसार में किसी भी प्रकार का भय मृत्यु के भय से बढ़कर नही है। जबकि मृत्यु भय का

विषय नहीं है। बल्कि यह मित्रता और लगाव का विषय है जिसने भी मृत्यु के भय के रहस्य को जान लिया मरने के बाद कैसा लगता है और क्या होता है, जो व्यक्ति ऐसे अज्ञात प्रश्नों से परदा हटा कर ज्ञान के प्रकाश से अवगत हो गया उसे मृत्यु के सभी भय नहीं लगेगा। जिसने भी मृत्यु के भय को जीत लिया है उसने समस्त प्रकार के भय पर विजय श्री प्राप्त कर ली। जिसने मृत्यु को मित्र बना लिया वस्तुतः उसने जीवन से भी मित्रता कर ली। मृत्यु को आना है, वह आये, हम क्यों डरें।

इस प्रकार से कुछ लोग मृत्यु को सहज अंगीकार करने की बात करते हैं। किन्तु गुरुदेव भगवान का तो कहना था कि मृत्यु के समय बहुत कष्ट होता है। साधारण मनुष्य को मृत्यु के समय हजार बिच्छू के एक साथ काटने के बराबर दुःख होता है जो पापात्मा है उसे दस हजार बिच्छू के एक साथ काटने जैसा दुःख होता है। और भी शास्त्रों में मृत्यु के दुःख का वर्णन हुआ है।

जब मनुष्य मर जाता है तो उसके बाद उसे एक और शरीर मिलती है जिसे आतिवाहिक शरीर कहते हैं इसके पश्चात उस जीव को उसके कर्मानुसार यदि पुण्य का भोग कराना है तो तेजः प्रधान देवदेह मिल जाता है जिसके पुण्य बल से स्वर्गादि लोकों के दिव्य भोगों को भोगता है और यदि पाप कर्म का फल भोगना है तो वायुप्रधान प्रेत देह मिल जाती है जिससे वह भयावह भोगों को भोगने के लिए मजबूर हो जाता है। इसे ही यातना देह कहते है। इसके बाद जीव को फिर सुख–दुःख को भोगने के लिये स्थूल देह मिलता है। यही चौरासी लाख योनि के रूप में है।

दुखों से बचने के उपाय–

ऊपर हमने सुख – दुःख का वर्णन किया है। अब इनसे बचने के उपाय बताते हैं। दुःखों से बचने के उपाय मनुष्य जन्म में ही किये जा सकते हैं अन्य जन्मों में नहीं पुण्य करते–करते जिन लोगों के पाप नष्ट हो जाते हैं। जरा और मरण की मुक्ति के लिये ये लोग प्रयत्न करते हैं और ब्रह्म ज्ञान को पा जाते हैं। साधक को सत्वगुण को ही बढ़ाने का प्रयास करना चाहिये। सत्वगुण की वृद्धि की दशा में यदि प्राण छूटते हैं तो सद्गति को पाता है। भगवान गीता में बताते हैं–

यदा सत्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत
ततो उत्तमविदाम् लोकानमलान्प्रति पद्यते।

गीता 14/14

अंग्रेजी के एक कवि ने तो मृत्यु को ही ललकार कर कहा – 'Death be not proud' ऐ मृत्यु ! भले ही तूने राजा महाराजाओं तक को नष्ट कर दिया किन्तु तू अपने इस बल पर अभिमान मत कर। मैं डरने वाला नहीं हूँ।

हमारे उपनिषद् कहते हैं – '**मृत्योरमामृतम् गमय**' हे प्राणी! तू मृत्यु की ओर न जाकर अमृतत्व की ओर जा क्योंकि तेरा लक्ष्य तो अमृतपद की प्राप्ति ही है। वस्तुतः उपासना, ज्ञान और योग सभी उपाय मृत्यु के पार जाने के उपाय है। योगी लोग जीते जी ही कई बार मरते हैं अर्थात् शरीर छोड़कर बाहर निकल जाते हैं और पुनः इसी में प्रवेश करते हैं इसी की चित्त

निर्माण की प्रक्रिया भी कहते हैं। ' मरणस्य मरणं कुतः ' जो एक बार मरना जान गया है उसका पुनः मरण क्या ? मुझे इस विषय में एक घटना याद आ रही है। आनन्दकन्द श्री प्रभु रामलाल जी महाराज के समय में एक दिन नारद मुनि ने प्रभुजी के एक भक्त को ध्यान में बताया कि प्रभु जी आज नेपाल चले गये हैं। इस शरीर में अपना प्राणकोश छोड़ गये हैं 20 दिन के पश्चात प्राणकोश भी छोड़ देंगे। नारद जी की बात शिष्यों में फैल गई सभी शिष्य अत्यन्त दुःखी होने लगे। शरीर छोड़ने के एक दिन पूर्व हमारे सद गुरुदेव योगी राज जी महाराज उनके चरणों में बैठ गये और श्री प्रभु जी ने कहने लगे प्रभु जी। लगता है कि आप हम लोगों को छोड़कर चले जायेंगे। श्री प्रभुजी ने कहा– बेटा ! तू किसी प्रकार की चिन्ता मत कर। ऐसा काम तो हम हजारों रोज करते हैं। उनका कहने का तात्पर्य था कि हम कितने ही शरीर दिन में धारण करते हैं और छोड़ देते हैं। अस्तु ! यह तो सिद्धेश्वर बात ! भूतजयी योगी कई–कई हजार वर्ष तक शरीर को रख सकते हैं क्योंकि उनका पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश पर विजय होता है ये उनके वश में आ चुके होते है इस कारण से योगी लोग तत्वों को इच्छानुसार कम–ज्यादा कर लेते हैं और मृत्यु से दूर हो जाते हैं उनके शरीर का क्षरण नहीं होता है।

हजारों वर्षो तक शरीर रखने के लिये भूतजयी होना आवश्यक है। व्यास भाष्य में लिखा है योगी के संकल्प के पीछे प्रकृति–पञ्च महाभूत इसी प्रकार से अनुगमन करते हैं जैसे सद्यः प्रसूता गाय बछड़े के पीछे–पीछे चलती है। यही योगी कल्पान्त जीवी हो जाते हैं।

मृत्यु के इस प्रकरण में यम–नचिकेता का प्रकरण भी समझने योग्य है। नचिकेता के पिता दान में गौओं को दे रहे थे। पाँच वर्ष के बालक ने पूछा– पिता जी मुझे आप किसे दोगे ? बार–बार पूछने पर क्रुद्ध हुये पिता ने कहा– मैं तुझे यमराज को दे रहा हूँ। बालक ने कहा– मैं आज्ञा का पालन करुँगा। यमराज के पास ही जाऊँगा। यमराज वहाँ नहीं मिले। तीन दिन बीतने के बाद यमराज आये और बालक से पूछा– कैसे व क्यों आये हो ? बालक ने सारी बात बता दी। यमराज ने कहा – मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम वर माँगो। नचिकेता ने मुक्ति के लिये योग विद्या के उपदेश की प्रार्थना की। यमराज ने उसे सांसारिक प्रलोभन दिये। पुत्र, पौत्र, धन सम्पत्ति विपुल ऐश्वर्य का वरदान लेने को कहा। किन्तु नचिकेता ने उन सब की नश्वरता को बताते हुये यमराज से एक ही प्रार्थना की कि वह उन्हें अग्नि–विद्या – योग–विद्या का ही उपेदश दे। यमराज ने प्रसन्न होकर योग विद्या का उपदेश दिया। नचिकेता अमरत्व को प्राप्त हो गया।

श्री मद्भागवद् की कथा भी मृत्यु से पार होने की कथा है। अमरत्व प्राप्ति की कथा है। राजा परीक्षित को शाप मिला कि एक सप्ताह में ही तुम्हें तक्षक काट लेगा और तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। राजा अत्यन्त चिन्ता में पड़ गया। उन्हें गुरुदेव योगेश्वर शुकदेव को मिल गये। उन्होंने परीक्षित को कथा सुनाई। परीक्षित ने दत्त चित्त होकर श्रवण किया ईश्वर का चिन्तन भी करता रहा। वृत्ति निरोध का अभ्यास करता रहा और सातवें दिन तक्षक ने काट लिया यह गुणातीत अवस्था निर्विल्प समाधि में आरूढ़ हो चुके थे। गुरुदेव की कृपा से वह जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होकर शाश्वत पद को प्राप्त हो गया।

हमारे हिन्दु समाज में अपने उद्धार के लिये और गतात्माओं की मुक्ति के लिये कथा कराई जाती है। अतः भागवत् श्रवण भी मुक्ति का अचूक साधन है। गीता में भी भगवान कहते हैं–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्

अर्थात् ओम इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और मेरा स्मरण करता हुआ जो शरीर का त्याग करता है वह परम गति को पा जाता है। इसी प्रकार से अन्य योगी जन भी जो ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर शरीर छोड़ते हैं वह भी संसार बन्धन से मुक्त हो जाते हैं –

निम्न श्लोक पढ़िये–

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति,

स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।

अर्थात् ऐसी ब्राह्मी स्थिति को पाकर योगी पुनः मोह–अज्ञान को प्राप्त नहीं होता है और इसी स्थिति को प्राप्त हुआ योगी शरीर छोड़ने के पश्चात ब्रह्म निर्वाण अर्थात् मोक्ष को पा जाता है। इसी ब्राह्मी स्थिति को पाने के लिये ही साधक को साधना करनी होती है यदि इसी में आरुढ़ रहता है तो वह मुक्ति भाजन हो जाता है।

इस प्रकार से हमारे मुक्ति दायक ग्रन्थ हमें मृत्यु के पाश को सदा के लिये छुड़ा कर मोक्ष प्रदान करते हैं। जरा–जन्म का क्रम टूट जाता है और जीव मुक्त हो जाता है यही सभी धर्मग्रन्थों का निर्णय है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

पृथ्वी को त्यागने से पूर्व भगवान श्री कृष्ण ने अपने मित्र उद्धव को भगवान दत्तात्रेय एवं महाराज यदु के आध्यात्मिक संवाद को सुनाया जिससे उद्धव जी के मन से मोह ममता का त्याग हो जाय। अवधूत शिरोमणि भगवान दत्तात्रेय ने बताया कि जिस अवस्था में मैं सर्वदा आरुढ़ रहता हूँ, वह चौबीस गुरुओं से शिक्षा ली है। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्दमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंगा, भौंरा या मधुमक्खी, हाथी, शहद निकालने वाला, हरिन, मछली, पिंगला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुँआरी कन्या, बाण बनाने वाला, सर्प, मकड़ी और भृङ्गी कीट। भगवान दत्तात्रेय ने कहा– राजन! अब तुम्हें हम बाण बनाने वाले से जो मैं ने शिक्षा ग्रहण किया वह बताता हूँ। आसन और श्वास को जीतकर वैराग्य और अभ्यास के द्वारा अपने मन को वश में कर ले और फिर उसे सावधानी से एक लक्ष्य में लगा दे। जब मन परमानन्द स्वरूप में स्थिर हो जाता है, तक कर्म वासनाओं के धूल बहा देता है। सत्व गुण की वृद्धि से रजोगुण और तमोगुण की वृत्तियों का त्याग करके मन वैसे ही शांत हो जाता है, जैसे ईंधन के बिना अग्नि।

मन एकत्र संयुञ्ज्याज्जितश्वासो जितासनः।
वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणभतन्दितः ।। 11।।
यस्मिन् मनोलब्धपदं यदेतच्छनैः शनैर्मुञ्चति कर्मरेणून्।
सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च, विधूय निर्वाणमुपैत्यनिन्धनम्।। 12।।

अ. 9, स्कं. 12

इस प्रकार निरुद्ध हुये चित्त वाले को बाहर–भीतर किसी पदार्थ का भान नहीं होता। मैंने देखा एक बाण बनाने वाला कारीगर बाण बनाने में इतना तन्मय हो रहा था कि उसके पास से दलबल सहित राजा की सवारी निकल गई और उसे पता तक न चला।

राजन! मैंने साँप से यह शिक्षा ग्रहण किया कि उसकी तरह एकाकी विचरण करे मण्डली नहीं बाँधे और मठ तो बनाना ही नहीं चाहिए। वह एक स्थान में न रहे, गुहा आदि में पड़ा रहे बाहरी आचरणों से पहचाना न जाय। किसी से सहायता न ले और कम बोले। सर्प दूसरों के बनाये घर में घुसकर बड़े आराम से अपना काटता है अतः घर बनाने के पचड़े में आत्म–ज्ञानी को नहीं पड़ना चाहिये।

मकड़ी से ली हुई शिक्षा को सुनो। जैसे मकड़ी अपने मुँह से जाला फैलाती है, उसी में विहार करती और उसे निगल जाती है, वैसे ही परमेश्वर अपने में से इस जगत् को उत्पन्न करते हैं, उसमें जीव रूप से विहार करते हैं और फिर उसे अपने में लीन कर लेते हैं।

राजन ! मैंने भृङ्गी कीड़े से यह शिक्षा लिया कि यदि प्राणी स्नेह से, द्वेष से या भय से भी अपना मन किसी में एकाग्र करदे तो उसे उसी वस्तु का स्वरूप प्राप्त हो जाता है। भृङ्गी जब एक कीड़े को ले जाकर दिवाल पर अपने रहने की जगह बंद कर देता है और वह कीड़ा भय से उसी का चिन्तन करते–करते अपने पहले शरीर का त्याग किये बिना ही उसी शरीर से तद्रूप (भृङ्गी) हो जाता है।

कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यां तेन प्रवेशितः।
याति तत्सात्मतां राजन् पूर्वरूपमसन्त्यजन्।। 23।।

अ.9, स्क. 11

इस प्रकार मैंने इतने गुरुओं से ये शिक्षायें ग्रहण किया।

भगवान ने अपनी अचिन्त्य शक्ति से वृक्ष, रेंगने वाले पशु, पक्षी, मछली आदि अनेकों प्रकार की योनियाँ रचीं परन्तु वे सन्तोष जनक नहीं थे। तब उन्होंने मनुष्य शरीर की रचना किया। यह ऐसी बुद्धि से युक्त है, जो ब्रह्मसाक्षात्कार कर सकती है। यद्यपि यह अनित्य है परन्तु इससे परमपुरुषार्थ मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। अन्य योनियों में यह सम्भव नहीं है। अकेले गुरु से ही यथेष्ट और सुदृढ़ बोध नहीं होता, उसके लिये अपनी बुद्धि से भी सोचने समझने की आवश्यकता है। ऋषियों ने एक ही अद्वितीय ब्रह्म का अनेकों प्रकार से गान किया है।

न ह्येकस्माद गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात् सपुष्कलम्।
बहूनदद्वितीयं वै रीयते बहुधर्षिभिः ।। 31।।

अ. 9, स्क. 11

भगवान श्री कृष्ण ने कहा– प्यारे उद्धव ! हमारे पूर्वज राजा यदु ने दत्तात्रेय जी की पूजा वंदना किया और वे प्रसन्नता पूर्वक इच्छानुसार कहीं चले गये। महाराज यदु आसक्तियों से छुटकारा पा गये और समदर्शी हो गये।

ग्यारहवाँ स्कन्ध पूर्णतया उद्धव को निमित्त बनाकर परमगुरु श्री कृष्ण ने गीतोक्त उपदेश को नये रूप में वर्णित किये हैं। गीता का उद्गम् कुरुक्षेत्र को नये रूप में वर्णित किये हैं। गीता का उद्गम् कुरुक्षेत्र में रणोन्मत्त कौरव–पाण्डवों की सेना के मध्य अर्जुन के मोह को नष्ट करने हेतु हुआ। इस स्कन्ध में प्रिय उद्धव को भान हो गया था कि अब मेरे प्रियतम् श्री कृष्ण धराधाम छोड़ने वाले हैं। उनकी आशक्ति, स्नेह सम्बंध भगवान के स्थूलत्व में गहरा बँधा हुआ था। अतः उसे तोड़ने हेतु इस स्कन्ध में भगवान श्री कृष्ण ने आध्यात्म दर्शन की गंगा बहायी है जिससे श्रीमान् उद्धव जी ही नहीं कालान्तर में आने वाले सम्प्रबुद्धों को भी रास्ता स्पष्ट दिख सकेगा।

इस स्कन्ध के दसवें अध्याय में लौकिक तथा पारलौकिक भोगों की असारता भगवान ने वर्णन किया है। वे कहते हैं – प्यारे उद्धव ! सभी को वर्णाश्रम के अनुसार सदाचार में रहकर मेरे द्वारा वर्णन किये गये धर्मों का अनुष्ठान सावधानी से करना चाहिये। जगत के विषयों में प्राणी सुख खोजता है, परन्तु मिलता है दुःख। अतः जो मेरी शरण में है उसे अर्न्तमुख बनाने वाले निष्काम कर्म ही करने चाहिए। जब आत्मज्ञान की उत्कट इच्छा जाग उठे, तब कर्म सम्बंधी

विधि–विधानों का भी आदर नहीं करना चाहिए। अहिंसा आदि यमों का दृढ़ता से पालन करना चाहिए परन्तु शौच आदि नियमों को मनो दशा पर छोड़ देना चाहिये। यम–नियमों के पालन से भी बढ़कर , जो मेरे स्वरूप को जानने वाले गुरुदेव हैं, उनकी सेवा मेरा ही स्वरूप समझकर करना चाहिये।

यमानभीक्ष्णं सेवते नियमान् मत्परः क्वचित्।
मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम्।। 5।।

अ. 10 स्क. 11

शिष्य को अभिमान नहीं करना चाहिये। किसी से ईर्ष्या न करे– किसी का बुरा न सोचे। उसे आलस्य रहित कर्म कुशल होना चाहिए। उसे ममता न हो और गुरु के चरणों में दृढ़ अनुराग हो। काम को पूर्ण चेतना से करना चाहिए, हड़–बड़ाहट में नहीं। परमार्थ ज्ञान हेतु सदैव इच्छुक रहे। किसी में गुण–दोष न देखे और व्यर्थ की बात न करे। उद्धव ! पंच भूतात्मक स्थूल शरीर तथा मन–बुद्धि आदि का सूक्ष्म शरीर दोनों जड़ है इन्हें प्रकाशित करने वाला आत्मा साक्षी एवं स्वयं प्रकाश है। आत्मा नित्य, एक एवं चेतन है। जीव को शरीर और शरीर को जीव समझने से ही स्थूल शरीर के जन्म–मरण और सूक्ष्म शरीर के आवागमन का आरोप आत्मा पर किया जाता है। इसका कारण केवल अज्ञान है। विद्या रूपी अग्नि की उत्पत्ति के लिये आचार्य और शिष्य नीचे– ऊपर की अरणियाँ हैं तथा उपदेश मन्थन काष्ठ है। इनसे जो अग्नि प्रकट होती है वही परमसुख देने वाली है। सद्गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान शिष्य में व्याप्त माया को भस्म कर देता है।

उद्धव ! लौकिक सुख की तरह ही पारलौकिक सुख भी दोष युक्त है। वहाँ प्रतिदिन पुण्य नष्ट होने से (असूर्यादि दोषों के कारण) एक दिन सम्पूर्ण नष्ट हो जाते हैं।

अधर्म परायण लम्पट लोग अन्त में घोर अन्धकार, स्वार्थ व परमार्थ से रहित नरक में जाते हैं। सारे लोक और लोकपालों की आयु एक कल्प है, वे सभी भयभीत रहते हैं। स्वयं ब्रह्मा भी मुझसे भयभीत रहते हैं, उनकी आयु भी काल से सीमित है। जब तक परतंत्रता है, तब तक भय बना ही रहता है। जो वैराग्य युक्त नहीं है, बहिर्मुख कर्मों में व्यस्त रहते हैं, उन्हें शोक और मोह प्राप्त होती है।

उद्धव! जब माया के गुणों में क्षोभ होता है, तब मुझ आत्मा को ही काल, जीव, वेद, लोक, स्वभाव और धर्म आदि नामों से जानने लगते हैं। ये सब माया भय हैं। आत्मा ही वास्तविक सत्य है।

काल आत्माऽऽगमो लोकः स्वभावो धर्मएव च।
इति मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति।। 34।।

अं. 10, स्क. 11

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

योगी अगड़धत्ता की कहानी महासिद्ध गुरुदेव की जुबानी

जगदीश राए बंसल 'अधम', मो. 92124334003

गतांङ्क से आगे–

सिद्ध लोकाधिपति, अखण्ड मण्डलाकार, अनन्त प्रभु श्री रामलाल जी महाराज द्वारा घटित ऋषिकेश की उक्त घटना के पश्चात महात्मा श्री अगड़धत्ता जी का व्यवहार मेरे (सिद्धों के सरदार गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज) प्रति बहुत बदल गया और वे मुझे आदर की दृष्टि से देखने लगे। मैंने और उन्होंने श्री वृन्दावन के गहवन वनों में एक साथ भ्रमण किया। भोजन के समय महात्मा जी नित्यअपने मन से किसी भी व्यक्ति को कुछ भोजन पदार्थ लाने की प्रेरणा कर देते और अपने मुख से स्पष्ट शब्दों में कह भी देते थे कि " आज हमने फलां व्यक्ति को हुकम कर दिया है। कुछ ही देर में वह व्यक्ति अमुक वस्तु लेकर यहाँ उपस्थित हो जाएगा।" आश्चर्य ! वास्तव में उनके कहने से थोड़ी ही देर बाद उनकी कही हुई वस्तु को लेकर वही व्यक्ति वहाँ उपस्थित हो जाता। उस व्यक्ति के आने पर महात्मा जी बिल्कुल विरक्त एवं अनजान भाव धारण किए रहते अर्थात् कुछ नहीं बोलते थे। इस तरह के व्यवहार से वह व्यक्ति यह नहीं जान पाता था कि स्वयं महात्मा जी की प्रेरणा से ही वह यह वस्तुएँ लेकर यहाँ आया है। मैंने महात्मा जी से ऐसा करने का कारण पूछा कि " आप इस तरह की प्रेरणा करके जो भोजन पदार्थ मंगाया करते हैं, इसके बजाए उसके घर पहुँच कर ही भोजन प्रसाद क्यों नहीं पा लिया करते हैं, भोजन तो उसी का है। " महात्मा जी ने इस तरह करने का रहस्य बताया कि " सांसारिक व्यक्तियों से कभी भी साधु को कोई सम्पर्क स्थापित नहीं करना चाहिए। ये तरह – तरह की फाँसीयों से बन्धे लोग, विभिन्न प्रकार की कामनाएँ मन में लेकर साधु– महात्माओं के दर्शन एवं सेवाएँ किया करते हैं। यह सब साधु सन्तों के लिए उचित नहीं है।"

एक दिन हम और महात्मा जी दोपहर के समय श्री राधा कुण्ड की ओर जा रहे थे। अवधूत महाराज ने मुझ से पूँछा क्यों ब्रह्मचारी जी, भूख लगी है ? हमने कहा कि हाँ, महात्मा जी, भूख तो लगी है। उन्होंने कहा कि अब हम इस गाँव के पटवारी को तत्काल हुकम करते हैं कि वह मालपुऐ और पूरीयाँ तैयार करके रखेगा। किन्तु बातचीत इससे भी नहीं करनी है। इसके बाद हम थोड़ा ही आगे चले थे कि उस गाँव के किनारे सड़क पर खड़ा वह पटवारी मिला। हम दोनों को देखते ही वह हाथ जोड़कर कहने लगा– महाराज, अभी थोड़ी देर पहले ही मेरे मन में यह भावना आई कि आज कोई महात्मा मिल जाए तो उनको अपने घर पर ले जाकर भोजन करा दूँ। बड़े भाग्य से आप दोनों मिल गए, कृपा करके मेरे घर चल कर भोजन कीजिए। उसकी इस प्रकार प्रार्थना करने पर हम दोनों उसके घर पर गए तो उसकी पत्नी छोटी कढ़ाई में माल पुए उतार रही थी और पूड़ी– सब्जी तैयार कर चुकी थी। हमने वहाँ भोजन प्रसाद लिया।

भोजनोपरान्त हम गाँव के बाहर एक वट वृक्ष के नीचे विश्राम करके, सायंकाल आगे

को श्री राधा कुण्ड की ओर चल दिए। हम घूमते – घूमते रात को ग्यारह बजे के लगभग श्री राधा कुण्ड पहुँच गए। शहर के सब लोग सो चुके थे। योगी अगड़धत्ता जी पूछने लगे, "ब्रह्मचारी जी भूख तो लगी ही होगी?" हमने कहा– "हाँ भाई भूख तो लगी ही है।" महात्मा जी कहने लगे, देखो ब्रह्मचारी जी, यहाँ एक ब्राह्मण परिवार का हलवाई की दुकान करता है। आज तक उसने किसी साधू– महात्मा को कुछ नहीं खिलाया–पिलाया है। हम उसी के सूक्ष्म को हुक्म करते हैं। वह दो कुल्हड़ दूध लेकर आएगा। हम तो उससे बात नहीं करेंगे, तुम दूध ले लेना। बस थोड़ी ही देर के बाद वह ब्राह्मण हलवाई लगभग दो सेर दूध के दो कुल्हड़ लेकर राधा कुण्ड पर आया। उस हलवाई ने बहुत विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि महाराज जी! मैंने आज तक किसी सन्त–महात्मा को कुछ भी नहीं खिलाया–पिलाया है। आज अकस्मात दुकान पर बैठे मेरे मन में भावना जगी कि यदि कोई महाराज–सन्त बाबा मिल जाए तो आज उन्हें कम से कम दूध ही पिला दूँ। बड़े भाग्य से आप दोनों मिल गए। कृपा करके यह दूध को पी लीजिए। हमने उसके दोनों कुल्हड़ दूध के ले लिए और उस ब्राह्मण के चले जाने के बाद हमने वह दूध पी लिया। दूध पी लेने के उपरान्त अवधूत जी कहने लगे देखो– ब्रह्मचारी! हम आदेश करते हैं कि ये गृहस्थी प्राणी सांसारिक कामनाओं को लेकर आते हैं, इसलिए इनसे बात नहीं करनी चाहिए। हमने स्वयं प्रेरणा करके दूध मंगवाया है, इसमें इनके त्याग की कोई भावना नहीं है।

बातचीत का प्रकरण चलते हमारा उनका थोड़ा वमनस्थ हो गया। फलस्वरूप महात्मा जी दूसरे रास्ते से और हम दूसरे रास्ते से मानसी गंगा पहुँच गए। हम दोनों एक ही चौबुर्जी पर बैठ गए।

न रंज अच्छा है – न मलाल अच्छा है।

प्रभु जिस हाल में रखे – वही हाल अच्छा है।।

अवधूत महाराज ने पूछा– "कहो ब्रह्मचारी भोजन किया?" हमने कहा, "नहीं, अभी तो नहीं किया।" महात्मा को उस समय हमारे प्रति बड़ा क्रोध था। उसी क्रोध में अपनी शक्ति को प्रत्यक्ष दिखलाने के लिए महात्मा ने अपने हाथ की अंगुली के संकेत से एक बन्दर को अपनी ओर बुलाया। बन्दर उस के पास आने पर महात्मा ने हमारी ओर संकेत करके उस बन्दर को ताड़नात्मक प्रेरणा की। उनकी प्रेरणा पा कर बन्दर बड़े वेग से हमारी तरफ बढ़ा। मैंने तत्क्षण यह अनुभव किया कि योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का तेज हमारे हृदय में विद्यमान है। हमने अपने मन में दृढ़ संकल्प के साथ उस बन्दर को वहीं रुक जाने का संकेत किया। फलतः उस बन्दर को वहीं रुक जाना पड़ा। ऐसा देख कर अवधूत बाबा को बड़ी चिड़ हुई और तिलमिला कर हमसे कहा– "तुम्हें पता भी है यह बन्दर किसने भेजा था?" इसका कारण यह है कि तुमने हमारा मन दुखाया है। श्री प्रभु जी को अपने बड़े बच्चे (स्वयं महात्मा) का दुखी होना उचित नहीं लगा। किन्तु हमने अपनी शक्ति से उसे रोक दिया, अन्यथा तुम बड़े परेशान हो जाते।"

आप इतना सीधे हैं – जितना लम्बा बाँस।

पोर पोर में गाँठ है - रोम रोम में फाँस।।

उस महात्मा की सारी बनावटी बातें सुन कर हमारे मन में बड़ी हंसी आई। बन्दर को हमारे ऊपर ताड़ना की प्रेरणा तो उसने स्वयं ही की थी मगर श्री प्रभु जी के आत्म तेज के प्रभाव से ही बन्दर को वहीं का वही रुकना पड़ा था। इन सब बातों को समझ कर भी हमने मौन रहना ही उचित समझा।

ये जिन्दगी तो बहुत कम है - दोस्ती के लिए।
कहाँ वक्त मिलता है - दुश्मनी के लिए।।

इस चमत्कारी घटना के पश्चात तो महात्मा अवधूत जी के मन में काल चक्र, युग चक्र, और जग चक्र को चलाने वाले सर्व समर्थ श्री प्रभु रामलाल जी महाराज के कृपामय श्री चरण विन्दों में महती श्रद्धा का अंकुर फूट पड़ा। बारम्बार श्री प्रभु जी के श्री चरणों की वन्दना–अर्चना करने लगे। ऊपरी तौर से चाहे वह कुछ भी शब्द कह देते थे, मगर वास्तविकता तो मन में समझते ही थे। कभी कभार कोई प्रसंग आ जाने पर महात्मा जी अपने मुख से कह दिया करते थे कि " भाई आनन्द कन्द, कृपा निधि, दया सागर श्री प्रभु जी तो शुद्ध ब्रह्म हैं। उनकी शक्तियों का पार कौन पा सकता है, वे तो परात्पर हैं।"

सोई जानहिं जेहि देहुं जनाई।
जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होई जाई।।

फिर कहते उनको तो वही जान सकेगा, जिनको वे स्वयं अपना ज्ञान देना चाहेंगे। इस प्रकार श्री प्रभु जी की स्तुति करते–करते महात्मा अगड़धत्ता जी प्रायः गद् गद् कण्ठ हो कर भाव विभोर हो उठते थे। बार–बार श्री ऋषिकेश जा कर श्री प्रभु जी के दिव्य दर्शन पा कर कृतार्थ हो जाया करते थे।

महात्मा श्री अगड़धत्ता जैसे संत जनों के चरित्र साधारण जन समझ नहीं पाते हैं तथा उनकी विचित्र लीलाओं पर शंका करने लग जाते हैं, जैसे – गर्भ संहिता में एक कथा आती है कि श्रावण मास में एक दिन रास के समय भगवान श्री कृष्ण जी बहुत विलम्ब से पधारे। गोपियों ने विलम्ब से आने का कारण पूछा तो श्री भगवान बोले, मेरे ब्रह्म विद्या के गुरू, मुनि दुर्वासा जी आए हैं। मैं उनके दर्शनार्थ चला गया। गोपियाँ चकित हो गई कि आपके गुरु ? वे बहुत महान होंगे अतः हम भी उनके दर्शन लाभ लेंगी। हम उनको भोजन भी कराएँगी। गोपियों ने शुद्ध प्रेम से भान्ति–भान्ति के मिष्ठान बनाए। श्री दुर्वासा मुनि का आश्रम यमुना के उस पार था। गोपियों ने अखिल लोक पावन भगवान श्री कृष्ण जी से मुनि जी के आश्रम जाने का उपाय पूछा तो भगवान श्री कृष्ण ने कहा कि यमुना जी से कहना कि यदि श्री कृष्ण बाल ब्रह्मचारी और उपवासी है तो हमें मार्ग दीजिए। यमुना जी ने सहर्ष मार्ग दे दिया। गोपियों ने अपनी–अपनी भण्डारे की डालियों का सारा भोजन श्री दुर्वासा मुनि को कराया। अब दुर्वासा जी से विदा लेते समय यमुना पार करने की वही समस्या सामने आई। श्री दुर्वासा जी बोले– श्री यमुना जी से कहना कि यदि दुर्वासा नित्य उपवासी है तो यमुना मैय्या हमें मार्ग दे। बिल्कुल वैसा ही हुआ, यमुना मैय्या ने तुरन्त मार्ग दे दिया।

गोपियों ने सोचा गुरू – शिष्य दोनों बराबर हैं। इतनी सारी रानियाँ होते हुए भगवान श्री कृष्ण ब्रह्मचारी हैं और मिष्ठानों का ढेर डकार जाने वाले ऋषि दुर्वासा नित्य उपवासी हैं। ये कैसे ब्रह्मचारी हैं और वे कैसे उपवासी ? देखिए– प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर गोपियों को सर्वात्मन श्री कृष्ण एवं महर्षि दुर्वासा के वचन असत्य लगे थे, परन्तु श्री यमुना जी के मार्ग देने पर विवश हो कर गोपियों को विश्वास करना पड़ा था। उसी प्रकार अवधूत योगी अगड़धत्ता जी के चरित्र में विरोधाभास प्रतीत होता है। वास्तव में मैंने उनको कभी खाते–पीते नहीं देखा था। यह उनकी क्या लीला थी, कहा नहीं जा सकता। कदाचित बाद में वह मेरे सामने खाने–पीने का अभिनय करते हों और वास्तव में कुछ न खाते पीते हो। परन्तु यह निश्चय है कि वह पूर्ण विरक्त एवं योगानुभवी सन्त थे एवं तत्वों पर उनका पूर्ण अधिकार था अर्थात वे तत्व विजयी थे।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः .....

पातिव्रत और योग

श्रीमती सरिता भारद्वाज, एम.ए., बी.एड, सांख्ययोग आचार्य

योग सार्वभौम विद्या है। सभी धर्म, जाति, देश, लिंग तथा आयु के व्यक्ति योग अभ्यास द्वारा सुख–दुख से रहित शाश्वत शान्ति का अनुभव कर सकते हैं। तथा योगी बनकर भव–भास्कर के सन्ताप से आत्मरक्षा करते हुए आनन्द का जीवन जी सकते हैं। नारियाँ पुरुषों से किसी क्षेत्र में पीछे रहने वाली नहीं हैं। वे शक्ति–स्वरूपा हैं। उन्हें अपनी शक्ति का जब तक बोध नहीं होता तब तक वे स्वयं नारकीय जीवनयापन करती हैं और मानव–शरीर लेकर भी वासनामय संसार का विस्तार करके इस पावन पवित्र जीवन को कलहपूर्ण बनाती हैं। इतिहास साक्षी है तपस्विनी और योग–परायणा देवियों ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश तक को अपने तपोबल से भक्ति के बल से सगुण, साकार रूप में अपना पुत्र बनने को विवश कर दिया। देवी कौशल्या की गोद में अज, निर्गुण, निराकार ब्रह्म, राम बन कर खेले और यशोदा की गोद में त्रिलोकी के नाथ कृष्ण रूप में आकर भक्ति के वशीभूत होकर बालक बन गये। सावित्री जैसी पातिव्रत–परायणा तपस्विनी देवी ने काल का विधान ही बदल दिया और अपने पति सत्यवान की मृत्यु से रक्षा की।

योग साधना का अर्थ सामान्यतया यही समझा जाता है कि आसन, प्राणायाम, ध्यान धारणा और समाधि का अभ्यास करना योग कहलाता है। योग का यह पक्ष तो है ही, एक दूसरा पक्ष भी है जिसे आत्म–समर्पण या योग की भाषा में प्रणिधान भी कहते हैं। वह समर्पण परम गुरु ईश्वर, गुरुदेव अथवा पतिदेव के प्रति किया जाए तो वह एकाग्रता का सम्पादन करने वाला अनन्य योग या प्रेम योग सिद्ध होता है। गोपियाँ इसी योगमार्ग की साधना करने वाली थीं। योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने भगवत्गीता नामक योगशास्त्र में संकेत किया है:–

मय्येव मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव, अतोर्ध्वम् न संशयः।।

अर्थात् अपने आराध्य के मन में मन, चित्त में चित्त, बुद्धि में बुद्धि, अहंकार में अहंकार और प्रकृति में प्रकृति लय कर देने से आराधक तदरूप हो जाता है और उसमें अपने इष्ट के गुण–धर्म और शक्ति–सामर्थ्य स्वतः आ जाते हैं। गोपियों ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण की पतिरूप में इसी प्रकार की साधना की थी। सूफी साधना–पद्धति भी पति–पत्नी भाव के प्रेम की बहुत उच्चकोटि की साधना है जिसकी पूर्णता एक का दूसरे में समर्पण करने से होती है। साधना के इस रहस्य को आजकल बहुत कम देवियाँ जानती हैं। आज कल की नारियाँ सन्त–शिरोमणि तुलसी के कथन की साकार मूर्ति बनती जा रही हैं– ' अवगुण आठ सदा उर रहहीं ' ..... साहस अनृत चपलता माया आदि अवगुणों की खान बनती जा रही है। जब गृहलक्ष्मी और घर की शक्ति ही अवगुणों का भण्डार बन जायें तो उनसे उत्पन्न होने वाली

सन्तान दैवी सम्पत्ति शाली कैसे हो सकती है ? प्रकृति का सिद्धान्त है कारण के गुण ही कार्य में आते हैं। इस नियम के अनुसार यदि अपने देश को ऋषि–मुनियों का देश बनाना है तो सबसे पहले इस देश की ललनाओं को सती सावित्री, सीता, अनुसुईया जैसी योगिनी बनाना होगा। क्योंकि पवित्र आत्मायें सत्कर्मी माताओं की कोख में ही जन्म लेने आती हैं। भगवान राम को प्राप्त करने के लिये कौशल्या ने शतरूपा के रूप में कितनी कठोर तपस्या की थी।

रामकृष्ण परमहंस स्त्रियों के लिये दो रूप बताया करते थे– विद्या और अविद्या। विद्या रूपा देवियाँ मधुर बोलने वाली, पति को ही अपना परम आराध्य मानती है और तन मन से पति की सेवा करना परमधर्म मानती है। उनका चित्त पति में इतना अनुरक्त रहता है कि वे अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य को पुरुष रूप से नहीं देखतीं। सभी में पुत्र या भाई की भावना रखती हैं। उनका आचरण पति को निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। उनका जीवन पति को वासना के नरक में गिराने वाला न होकर ज्ञान, वैराग्य और भक्ति–पथ पर अग्रसर करने वाला होता है। विद्यास्वरूपा देवियाँ अपनी देह–बुद्धि से ऊपर उठी हुई होती हैं। वे स्वयं अपने समर्पण द्वारा पति की शक्ति बन जाती हैं और परमार्थ पथ की पथिक बन कर साधना–पथ के काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के आक्रमणों से पति की सदा रक्षा करती हैं। एक तरह वे पति का कवच बन जाती हैं। ऐसी देवियाँ सच्चे अर्थों में योगिनी कहलाती हैं। इसके विपरीत जो अविद्या – रूपिणी स्त्रियाँ हैं, वे वास्तव में आठ अवगुणों की खान होती हैं। वे हर समय व्यर्थ का वाद–विवाद कर घर का वातावरण अशान्त बनाये रखती हैं। उनकी वाणी में मिठास नाम की कोई चीज नहीं होती। उनके शब्द तीर की तरह कलेजे को वेध देते हैं बात बनाना, चुगली करना और हर समय शृंगार, साड़ी, आभूषण तथा चाट–पकौड़ी की चर्चा करने के अतिरिक्त उनके पास और कुछ नहीं होता। वे अपनी देह में ही घिरी रहती हैं। देह को सजाना और उसी के लिये सब साधन जुटाने में ही उनका जीवन नष्ट हो जाता है।

" हीरा जन्म अमोल था, कोड़ी कीमत जाय "

वाली कहावत चरितार्थ होती है। अविद्या – रूपिणी स्त्रियों में फिजूलखर्ची होती है जिसके कारण वे पति को हर समय नई–नई फरमाइशों से अपनी इच्छाओं का गुलाम बनाकर रखती हैं जिससे पति को अन्याय और अधर्म करके उनको सजाने का उपाय करना पड़ता है। पति बेचारा जप, ध्यान, पूजा अतिथि सत्कार तथा परोपकार करना भी चाहे तो उसे ऐसी देवियों की कृपा से सुबुद्धि नहीं हो पाती और न अवसर ही मिल पाता है। ऐसी नारियों के लिए ही शंकराचार्य ने नारी को नरक का द्वार कहा है। वे पुरुष के मन को भोग और वासना के दलदल से निकलने ही नहीं देतीं और अपने नारकीय जीवन से घर को कलहपूर्ण बना कर दुःख और सन्ताप से भर देती हैं। उनका रूप पुरुष के लिए और भी अभिशाप होता है। नीतिकारों ने इसीलिये कहा है– ' **भार्यारूपवती शत्रुः।** ' देहासक्ति से ऊपर उठकर ऐन्द्रिय जगत् से परे दिव्य आनन्द के दर्शन का कभी उन्हें सौभाग्य नहीं मिलता। ऐसी देवियों के कोख में कभी दिव्य आत्मायें नहीं आ पातीं। जो विद्यास्वरूपा होती है, वे देह और गेह में अपने पति को कम से कम लगाकर रखना चाहती हैं। वे जानती हैं कि जप, तप, ध्यान और योग के द्वारा अक्षय पुण्य का संचय होता है। यदि वे स्वयं घर की सेवा में लग कर किफायत से घर चला सकें, पति के मन को

अपने व्यवहार से प्रसन्न रख सके तो उन्हें परमार्थ–पथ पर बढ़ने का समय मिल सकेगा। उनके पुण्यों में से आधा भाग उन्हें स्वतः अपनी सेवा के बदले में मिल जायेगा। इसके विपरीत अविद्या रूपिणी स्त्रियाँ कहती हैं हम पुरुषों से क्या कम हैं। वे अपेक्षा करती हैं कि उनके पतिदेव ही क्यों न उनकी सेवा करें। सेवा को वे गुलामी समझा करती हैं। जब भी उन्हें अपने काम से फुर्सत मिलती है तो वे दूसरों के घर जाकर जब तक सारे मुहल्ले की निन्दा न कर लें तब तक मानों उन्हें भोजन हजम नहीं होता। उनका सारा समय पाप–संचय करने में लगा रहता है। विद्या रूपा चाहती है:–

रूप दे तो शक्ति भी दे,
पति-चरण में भक्ति भी दे।

अविद्यारूपानारी अपने नश्वर रूप पर गर्व करके व्यभिचार को निमन्त्रण देती रहती हैं। वे किसी अन्य महिला से मिलती है तो उनकी जिज्ञासा का क्षेत्र है– ये साड़ी कितने की ? मेरे पास इतने आभूषण हैं।' आज मैंने बड़ी स्वादिष्ट चीजें बनायीं हैं। 'विद्यास्वरूपा ईश्वर की दी हुई वस्तु को ईश्वर के समर्पण करने में ही अपना अहोभाग्य समझती हैं, इसलिए मधुर कण्ठ पाकर प्रभु का नाम संकीर्तन करती हैं, सुन्दर रूप पाकर दीन–दुखियों की सेवा कर उसे सार्थक करती हैं। एक सन्त कहा करते थे कि जब तक पति नहीं मिलते तब तक स्त्री उसको रिझाने के लिए तरह–तरह का श्रृंगार करती है जब उसके हृदय में पति के प्रति सच्चा प्रेम पैदा हो जाता है, फिर श्रृंगार की कोई जरूरत नहीं रहती यदि स्त्री फिर भी चमक–दमक का श्रृंगार करती है, तो समझना चाहिये कि उसके हृदय में पति के प्रति सच्चा प्रेम पैदा नहीं हुआ। उसका प्रेम या तो वस्त्रों में और आभूषणों में है, अथवा वह पति के अतिरिक्त किसी अन्य को प्रेम करती है। अपने पति के चरणों में अनुराग उत्पन्न हो जाए तो अनुराग उसका सबसे बड़ा श्रृंगार बन जाता है। पति–परायणा नारी के लिये सन्तों ने कहा है :–' पतिव्रता नंगी भली। 'जिसके मन में पति के प्रति भक्ति उदित नहीं हो सकी, उसकी सन्तान में कभी मातृभक्ति और पितृभक्ति नहीं आ सकती। क्योंकि पत्नी का व्रत, तीर्थ, यज्ञ सब कुछ पति सेवा में निहित है। मार्कण्डेय पुराण में अनुसूया का वचन है :–

सर्वकामफलावाप्तिः, पत्यु सुश्रूषणात्स्त्रियाः।

अर्थात् पति सेवा से पत्नी की सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। तथा :–

पुण्यस्यार्ध्यपहारिण्यः, पति सुश्रूषयैव हि।
नास्तिस्त्रीणांपृथग्यज्ञो, नश्राद्धं नाप्युपोषितम्।।

अर्थात् स्त्रियाँ पति–सेवा से ही उनके सब पुण्यों से आधा भाग प्राप्त कर लेती हैं। उनके लिए पति सेवा से अतिरिक्त यज्ञ, श्राद्ध अथवा उपवास का अलग से कोई विधान नहीं है। पातिव्रत सबसे बड़ा तप है।' काय वचन मन पति पद प्रेमा ' यह पातिव्रत धर्म का मूल मत्र है। पातिव्रत धर्म का पालन करने से देवियों ने असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया है। मार्कण्डेय पुराण में दत्तात्रेय और अलर्क का उपाख्यान आता है। पातिव्रत के प्रभाव से माण्डव्य मुनि का शाप कुछ अनिष्ट नहीं कर पाया। और सती–साध्वी अनुसूइया ने कैसे कुशिक वंशी ब्राह्मण की

रक्षा की, यह बहुत मार्मिक प्रसंग इस प्रकार है।

प्रतिष्ठान नगर में कौशिक गोत्र का एक ब्राह्मण रहता था। उसे पूर्व जन्म तीव्र संवेग से किये गये पाप कर्म के फलस्वरूप कुष्ठ रोग हो गया। उसकी पत्नी पति–परायणा थी, अतः कोढ़ी होने पर भी वह तन, मन, धन से उसकी सेवा करती थी और देवभाव से पूजा करती थी क्योंकि नारी के लिये पति ही देवतुल्य हैं। वे ही उसकी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण करते हैं। सीता जी को अनुसूइया ने उपदेश देकर इसी रहस्य का उद्‌घाटन किया था :–

मातु पिता भ्राता हितकारी।
मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।।

अमित दानि भर्ता वंदेही।
अधम सो नारि जो सेव न तेही।।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपदकाल परखिअहिं चारी।

बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना।
अंध बधिर क्रोधी अति दीना।।

ऐसेहु पति कर किय अपमाना।
नारि पाव जमपुर दुःख नाना।।

एकइ धर्म एक व्रत नेमा।
काय वचन मन पतिपद–प्रेमा।।

वह उसके मल मूत्र, रक्त, कफ को धोती, घाव धोती, चरण दबाती, प्रिय वचन तथा विनीत भाव से आदर के साथ उसकी सेवा कर अपना धर्म–पालन करती। जब पाप–कर्मों का प्रबल संस्कार होता है तो बहुत से और पाप–कर्म भी उस समय बन जाया करते हैं। कौशिक ब्राह्मण उस विनीत भाव वाली पत्नी को बुरा भला कहता रहता था क्योंकि क्रोध में व्यक्ति का विवेक नष्ट हो जाता है। और क्रोध का कारण काम होता है :–

कामात् क्रोधोऽभिजायते।

– गीता

घिनौने रूप वाला वह ब्राह्मण, जिसमें चलने तक की शक्ति न थी, एक दिन अपनी पत्नी से बोला कि तू मुझे राजमार्ग के पार्श्वगृह में रहने वाली उस वेश्या के घर ले चल जिसे मैंने एक बार देखा, तभी से वह मेरे हृदय में बस गयी है। यदि वह मुझे न मिली तो तू मुझे मृत पायेगी। मुझमें स्वयं चलने की सामर्थ्य नहीं है और वह मुझे चाहती है या नहीं, इसका मुझे–ज्ञान नहीं। कामातुर पति की बात सुनकर पतिव्रता व्याकुल हो गई। धैर्य धारण कर पति की प्राण–रक्षा के लिये वह उसे कन्धे पर रखकर अंधेरी रात में बिजली की चमक से ऊबड़खाबड़

मार्ग को पार करती हुई चल पड़ी। आगे मार्ग में चोरी के झूठे अपराध में माण्डव्य मुनि शूली पर चढ़े हुए दुःख भोग रहे थे। मार्ग में अंधेरा होने से पत्नी उनसे टकरा गई जिससे कौशिक मुनि का पैर ऋषि से लग गया। क्रोध से आग-बबूला होकर माण्डव्य मुनि ने दम्पति को शाप दिया- जिसने मुझे पैर से ठोकर मारी है, वह पापी सूर्योदय होते ही यन्त्रणा भोगता हुआ यमपुर का अतिथि बन जायगा। इस शाप को सुनकर उसकी पत्नी चिन्तित हुई। फिर उसने निश्चय किया कि मैं अपने पातिव्रत के प्रताप से हे सूर्योदय तुम्हें आदेश देती हूँ कि तुम उदित न होना।

अनेक रात्रियाँ बीत गई और पतिव्रता के प्रताप से सूर्योदय नहीं हुआ। तब देवता भयभीत होकर विचार करने लगे कि सूर्योदय के बिना यज्ञ, दान आदि क्रियायें कैसे होंगी ? स्वाध्याय, जप, तप, स्वधा और स्वाहा के लुप्त होने से विश्व की रक्षा कैसे होगी ? यज्ञ के बिना देवता तृप्त न होंगे तब तक जल और औषधियों के लिये वृष्टि कैसे करेंगे। देवता नीचे की ओर जल बरसाते हैं और मनुष्य उनको प्रसन्न करने के लिए यज्ञ, दान, तप देवताओं को ऊपर की ओर देते हैं इससे सृष्टि का सन्तुलन बना रहता है। इस क्रम के टूटते ही जल, अग्नि, सूर्य, वायु और पृथ्वी देवता दूषित कर पृथ्वी पर दारुण रोग पैदा कर देते हैं। जो यज्ञ अवशिष्ट भाग लेते हैं वे गीता में कहे हुए सिद्धान्तानुसार:-

' यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनत्। '

ब्रह्म पथ के अमृत पथिक बन जाते हैं चिन्तित होकर देवता इसका समाधान ढूंढने ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी ने देवताओं को उपाय बताया :-

तेजः परंतेजसैव तपसा च तपस्तया।।

अर्थात् परम तेज और तप से ही तप-प्रदत्त शाप का नाश हो सकता है। यदि तुम सूर्योदय चाहते हो तो तुम परम पतिव्रता महर्षि अत्रि की पत्नी को विनय और सेवा से प्रसन्न करो। देवताओं ने वैसा ही किया। प्रसन्न होकर अनुसूया बोली- हे देवो ! मुझसे तुम क्या चाहते हो ? देव विनयपूर्वक बोले - पहले के समान सूर्योदय हो जाए जिससे मनुष्य लोक के प्राणी यज्ञ, दान, तप आदि पुण्य कर्म कर सके। अनुसूया देवताओं की प्रार्थना सुनकर चिन्तित हो उठी-

पतिव्रतायामाहात्म्यं न हीयते कथंत्विति।

अर्थात् पतिव्रता का वचन और उसकी महिमा कभी नष्ट नहीं होती। यदि आप लोग चाहते हैं तो मैं ऐसा कोई उपाय करूँगी जिससे पतिव्रता के सम्मान की रक्षा भी हो जाए- उसके पति की शाप के कारण मृत्यु न हो- और सूर्योदय भी हो सके।

अनुसूया कौशिक ब्राह्मण की पत्नी के पास गयी और उनके पति की कुशलक्षेम पूछी। पतिभक्ति के महात्म्य को सुनाकर अनुसूया ने उस पतिव्रता की श्रद्धा को और दृढ़ किया और बोली- हे देवी ! जिस प्रकार तुम अपने पतिदेव को देवताओं से भी श्रेष्ठ मानती हो, उसी प्रकार मैंने भी पतिदेव की सेवा से तप की महान शक्ति प्राप्त की है। शक्ति प्राप्त करने का शास्त्रोक्त उपाय यही है कि व्यक्ति सदा सत्य, सरलता, तप, दान, दया-परायण रहे और राग-द्वेष रहित होकर शक्ति-अनुसार श्रद्धापूर्वक अपने वर्णाश्रम के अनुकूल शास्त्रोक्त कर्म करता रहे।

उससे मनुष्य सब लोकों को प्राप्त कर लेता है।

सत्यार्जव तपोदान
दयायुक्तो भवेत्सदा।
क्रिया च शास्त्र निर्दिष्टा,
रागद्वेष विवर्जितः।।
कर्त्तव्याहरहः श्रद्धापुर-
स्कारेण शक्तितः।
स्वजाति विहितानेवं लोकान्,
प्राप्नोति मानवः।।

मार्कण्डेय पु. 59,60

पत्नी की परमगति पति ही है।' बिनश्रम नारि परमगति लहहीं। ' अतः तुम अपने स्वामी की सेवा में लगी रहो। स्वामी द्वारा किये जाने वाले पितर, देवता, अतिथि–सत्कार तथा सत्कर्म सभी में पति सेवा–परायण स्त्री को आधा भाग प्राप्त होता है। कौशिक ब्राह्मण की पत्नी ने अनुसूया के वचन सुनकर उनका पूजन किया और बोली कि आपके दर्शन से मैं अनुगृहीत हूँ क्योंकि आपने स्वामी के प्रति मेरी श्रद्धा को और भी बढ़ा दिया है।' **नार्याभर्त्ता हि दैवतम्** ' नारी के लिये पति के अतिरिक्त और कोई गति नहीं है क्योंकि उनका देवता पति ही है। अब आप मुझे आदेश दीजिये कि मैं क्या करूँ। अनुसूया बोली– हे साध्वी ! तुम्हारा आदेश मान कर सूर्य देव प्रकट नहीं हुए जिससे दिन रात का भेद समाप्त होने से प्रकाश के अभाव में सत्कर्म नष्ट हो गये। यज्ञकर्मों के अभाव से अनावृष्टि हो गई जिससे विश्व में हाहाकार मच गया है। इस विपत्ति से संसार की रक्षा करो और सूर्य उदित होने दो। ब्राह्मणी बोली, माण्डव्य मुनि ने क्रोध में मेरे स्वामी को शाप दिया है कि सूर्योदय होते ही तेरे स्वामी की मृत्यु हो जायेगी। अनुसूया बोली, हे कल्याणि ! मैं अपने पातिव्रत धर्म के प्रभाव से ऐसा नहीं होने दूँगी। ऋषि का शाप मिथ्या नहीं हो सकता। अतः मृत्यु हो जाने के बाद मैं तुम्हारे पति के शरीर को पूर्ववत् स्वस्थ कर दूँगी। क्योंकि तुम्हारे व्रत की रक्षा करना भी मेरा धर्म है।

अनुसूया ने अर्घ्य देकर सूर्य का आवाहन किया। दस रात्रियाँ व्यतीत होने के बाद रक्तकमलाभ सूर्य उदयाचल में प्रकट हुए और इधर ब्राह्मण का प्राणान्त हो गया। अनुसूया ने खिन्नमना ब्राह्मणी को सान्त्वना देते हुए कहा– हे भद्रे ! विषाद न करो। मैंने पति सेवा के तपोबल से जिस शक्ति को प्राप्त किया है, वह तुम्हें अभी दिखाती हूँ। ऐसा कह कर उसने ब्राह्मण की ओर देख कर कहा– ' मैं रूप, शील, बुद्धि, वाणी, माधुर्य आदि सद्गुणों में अपने स्वामी के समान किसी अन्य को नहीं मानती तो मेरे इस सत्य के बल से यह ब्राह्मण रोगरहित युवावस्था को प्राप्त हो और पुनर्जीवित होकर सौ वर्ष तक पत्नी सहित जीवित रहे। यदि मैं अपने स्वामी के समान किसी अन्य देवता को नहीं मानती और मन, वाणी, शरीर से मैंने अपने स्वामी की नित्य आराधना की हो तो यह ब्राह्मण जीवित हो जाय। ' तपस्विनी अनुसूया के वचन कहते ही उसका

तेजोमण्डल ब्राह्मण के प्राणकोष में क्रिया करने लगा और वह ब्राह्मण रोगमुक्त युवक रूप में उठ खड़ा हुआ। देवताओं ने पुष्पदृष्टि और देववाद्यों की ध्वनि की और प्रसन्न होकर अनुसूया ने कहा, हे कल्याणि ! तुमने देवताओं का उपकार किया है, अतः देवता तुम्हें वर देना चाहते हैं। अनुसूया बोलीं– कि ये मेरा नहीं, मेरे पातिव्रत धर्म का प्रभाव है। जो उत्तम कोटि की पतिव्रता होती है, वे परम योगिनी बन जाता हैं क्योंकि योगी में मन की एकाग्रता से शक्ति आती है। योगी परम तत्त्व के साथ अपने मन का लय कर देता है, उससे उसका मन परमसत्ता की शक्ति वाला बन जाता है, जैसे जल की बूँद समुद्र में मिलकर समुद ही बन जाती है। जिस प्रकार गुरुदेव के चरणों की भक्ति अन्तर्गत के स्व ज्ञाने की कुञ्जी है, उसी प्रकार पति–चरणों की अनुरक्ति उस परम–पति की शक्ति पाने की कुञ्जी है। सीता जी को इसीलिए नारिधर्म का उपदेश देते हुए अनुसूया ने उन्हें पातिव्रत धर्म का ही उपदेश दिया। क्योंकि वही शक्ति पाने का मूल रहस्य है। चार प्रकार की पतिव्रतायें कही गयी हैं:–

जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं।
वेद पुरान संत सब कहहीं।।
उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपने हुँ आन पुरुष जग नाहीं।।
मध्यम पर पति देखइ कैसे।
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।।
धर्म विचारि समुझि कुल रहई।
सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहई।।
बिनु अवसर भय तें रह जोई।
जानेहु अधम नारि जग सोई।।
पति - बंचक पर पति-रति करई।
रौरव नरक कल्प सत परई।।
छनसुख लागि जनम सत कोटी।
दुख न समुझ तेहि सम को खोटी।।
बिनु श्रम नारि परमगति लहई।
पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहइ।।
पति प्रतिकूल जनम जहं जाई।
विधवा होइ पाइ तरुनाई।।
सहज अपावनि नारि,

पति सेवत सुभगति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि,
अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय।।

यह पातिव्रत धर्म का उपदेश सभी देश और सभी कालों के लिए आचरणीय है क्योंकि इसके बल से मृत को जीवनदान, शाप का शमन तथा पतिव्रता के वचनों की रक्षा अनुसूया ने करके दिखा दी, और इसी के प्रताप से उसने संसार के आवागमन के चक्र को उच्छेद करने वाले योग को भी देवताओं के आशीर्वाद से प्राप्त किया। यह योग आत्मा में आत्मा का संयोग है तथा मोक्ष का कारण और त्रिविध दुखों की आत्यन्तिक निवृत्ति है। जिससे जीव की पंचभूतों के साथ पुनः संगति नहीं होती और मन और शरीर भवरूपी भास्कर के सन्ताप से सन्तप्त नहीं होता तथा अविद्या रूपी काल सर्प से दंशित नहीं होता उस योग के प्राप्त करने के ऋषियों और आचार्यो ने देश, काल और पात्र का शक्ति– सामर्थ्य से अनेक उपाय बताये हैं। गीता में– भगवान श्रीकृष्ण ने स्वधर्म के पालन को भी योग प्राप्ति का साधन माना है। ' **स्वे–स्वे कर्मणि अभिरत : संसिद्धिं लभतेनर:** ' तथा ' **स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्ति मानवा:।** ' अर्थात् व्यक्ति जिस परिस्थिति में भी है उसी में रहकर पूरी निष्ठा के साथ उस कार्य को करते हुए उसे ही ईश्वर का कार्य और उसकी सेवा समझता है उस पर ईश्वर का अनुग्रह होता है और वह उसकी कृपा से परम योगी बन जाता है।

नारी भी अपने धर्म का पालन करती जाए तो धर्म पालन से उसकी धारणा पुष्ट होती जाती है। क्योंकि धर्म का लक्षण मनुमहाराज ने कहा है – **धारणात् धम मित्याहु:–** जीवनाधायक गुण और आचार धर्म है।' **आचार: प्रथमो धर्म:** ' अर्थात् सदाचार धर्म की प्रथम सीढ़ी है।' **धारणासु योग्यक्त मनस:** ' यह योगदर्शन का सूत्र है। इसकाअर्थ है धारणा पुष्ट होने पर मन में शक्ति ग्रहण तथा शक्ति उत्पन्न करने की योग्यता पैदा हो जाती है। ध्यान तथा समाधि धारणा की विकसित–अवस्थायें हैं। पतिपरायणा स्त्री के हृदय में श्रद्धा और प्रेम परिपूरित रहा करता है जिससे उसका मन एकाग्र होकर शक्ति का निधान बन जाता है। पतिव्रता नारी संप्रज्ञात योग की अधिकारिणी हो जाती है। उसका हृदय श्रद्धा का खजाना तो होता ही है। यदि वह अपने पातिव्रत धर्म में दीक्षित हो जाती है तो सत्य और तप से वह आत्मतत्व का साक्षात्कार कर सकती है। जैसा कि उपनिषदों में कहा गया है :–

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा।

अविद्यारूपी नारी योग मार्ग की बाधा बन जाती है। जिस प्रकार घर में एक स्त्री सुशिक्षित हो तो पूरा परिवार शिक्षा प्राप्त कर सकता है। उसी प्रकार यदि घर में एक दैवी सम्पति वाली नारी हो तो वह घर को स्वर्ग बना सकती है और अपने पति को कुपथ से हटाकर सत्पथ पर लगा सकती है। प्रेम की शक्ति सबसे बड़ी शक्ति है। यदि पत्नी के मन में पति के प्रति सच्ची अनुरक्ति है तो उसके प्रेम पाश से वह बड़े से बड़े कार्य कर सकता है। उसका प्रेम पाश–भव पाश भी बन सकता है और उसका प्रेम पाश उसे तुलसी जैसा संत भी बना सकता है। स्त्री के पत्नीत्व की सार्थकता इसी में है कि वह शक्तिस्वरूपा बनकर अपने पति को शिवत्व में प्रतिष्ठित

कर दे। नारकीय कीड़ा बनाने से वह स्वयं भी अधोगति को प्राप्त करती है और अपने साथ घर की पूरी नाव डुबा देती है। नारी प्रजनन और भोग के लिए ही नहीं है वह योग के लिए परम सहायक है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने ' यशोधारा ' काव्य में यशोधारा के मुख से यह प्रश्न उठाया है – ' योग मार्ग की बाधा नारी । ' फिर उसकी क्या गति है ? यदि नारी अपनी शक्ति को कल्याण मार्ग में मोड़ दे तो वह पति की साधना में सहायक बनकर उसे शिव बना सकती है और महालसा अपनी सन्तान को बनाकर ब्रह्मज्ञानी, धर्मात्मा बना सकती है। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे अपनी माता की कृपा से ही हुए हैं, तुलसी ने उसी माता को धन्य बताया है जिसका पुत्र भक्त तथा योगी बन जाता है –

पुत्रवती युवती जग सोई।

रघुवर भक्ति जासु सुत होई।।

पतिव्रता की कोख से ही योगी, ज्ञानी, भक्त तथा भगवान जन्म लेते हैं।

सद्गुरु से सीखिए

मनुष्य की दृष्टि को यह आदत- सी पड़ गई है कि वह उसी का अस्तित्व मानती है जो उसे दिखाई पड़ता है, और जो वस्तु गुह्य होती है उसे वह गोप्य कहता है। पर जो कुछ प्रकट है, उसे असार समझना चाहिए, और जो गुप्त है, उसे सार समझना चाहिए। यह बात गुरु से ही अच्छी तरह समझी जा सकती है। जो समझ में न आवे, उसे विवेक बल से समझना चाहिए, जो दिखाई न पड़े, उसे विवेक-बल से देखना चाहिए, और जो जान न पड़े, उसे विवेक-बल से जानना चाहिए। जो गुप्त हो, उसे प्रकट करना चाहिए, जो असाध्य हो, उसका साधन करना चाहिए, और जो कठिन हो, उसका अभ्यास करना चाहिए। वेद, ब्रह्मा और शेषनाग भी जिसका वर्णन करते- करते थक गये हैं, उसी परब्रह्म को प्राप्त करना चाहिए। यदि कोई पूछे कि उसकी साधना कैसे की जाए, तो इसका उत्तर यह है कि अध्यात्म- सम्बन्धी बातें सुनकर उस परब्रह्म की प्राप्ति करनी चाहिए। वह पृथ्वी, जल, तेज या वायु नहीं है, वह रङ्ग-रूप आदि से व्यक्त नहीं होता, वह अव्यक्त है। उसी को ईश्वर समझना चाहिए।

-समर्थ रामदास

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

गुण ही गुणों में वर्तते हैं, मैं हूँ अकर्ता

मनमोहन कृष्ण शिखा

श्री गुरुदेव भगवान योग–योगेश्वर श्री चन्द मोहन जी महाराज अपने प्रवचनों में भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन बहुत बार किया करते थे। उन्हीं लीलाओं में से एक लीला का वर्णन हम यहाँ करेंगे और उसे समझने का प्रयास करेंगे। योग–योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान यमुना के इस पार गोपियों के साथ हैं और उनके गुरुदेव ऋषि दुर्वासा जी यमुना के उस पार अपने शिष्यों के साथ विराजमान हैं। भगवान श्री कृष्ण ने गोपियों से कहा कि वह उनके गुरुदेव श्री दुर्वासा जी को दूध, दही और खाना दे आएं। इस पर गोपियों ने कहा कि यमुना में बहुत बाढ़; आ रही है, हम उसे पार कैसे करेंगे। भगवान श्री कृष्ण ने कहा कि तुम यमुना जी से कह देना की यदि कृष्ण अचुत्य हैं तो रास्ता दे दें। अचुत्य का अर्थ है जो कभी माया के चक्कर में पड़ा ही नहीं या जो कभी पथभ्रष्ट हुआ ही नहीं। गोपियाँ आपस में बात करने लगी कि कृष्ण अचुत्य कैसे हो सकते हैं। वह तो रोज हमारे साथ रास करते हैं, नृत्य करते हैं और हंसी मजाक करते हैं। फिर भी चलो जा कर देख लेते हैं। अगर यमुना रास्ता दे देगी, तो उस पार चले जाएँगे।

गोपियों ने जब यमुना जी से कहा– अगर कृष्ण अचुत्य हैं तो रास्ता दे दो। यमुना जी ने तुरंत रास्ता दे दिया और गोपियाँ यमुना के पार चली गई। वहाँ जाकर उन्होंने महाऋषि जी और उनके शिष्यों को खाना खिलाया और उन्होंने इतना खाना खाया कि सारा खाना खत्म हो गया। सब मटकियाँ खाली कर दीं। अब सिर पर खाली मटकियाँ रखकर गोपियाँ तैयार हो गई वापिस भगवान श्री कृष्ण के पास जाने के लिए। यमुना जी तो अभी भी चढ़ी हुई थी और गोपियाँ सोचने लगी की अब हम यमुना जी को पार कैसे करेंगे।

उन्होंने दुर्वासा ऋषि जी से कहा कि यमुना तो बहुत चढ़ी हुई हैं, हम कैसे पार जाएंगे। महर्षि दुर्वासा जी ने पूछा कि तुम आए कैसे थे। तो गोपियों ने बताया कि श्री कृष्ण जी ने उनसे कहा था कि तुम युमना जी से कह देना अगर कृष्ण अचुत्य हैं तो रास्ता दे दो। इतना कहने पर यमुना जी ने रास्ता दे दिया और हम आ गए। दुर्वासा ऋषि ने गोपियों से कहा कि तुम यमुना जी से कह देना कि अगर दुर्वासा ऋषि ने अपने जीवन में कभी भी कुछ खाया–पीया नहीं, (आजीवन निराहार रहे हैं) तो रास्ता दे दो। सिर पर मटकियाँ रखकर गोपियाँ वापस चलने लगी यमुना जी की ओर। और आपस में बातें करने लगी कि गुरु तो शिष्य का भी बाप निकला। देखो, हमारे सामने इतना सारा खाया, सारी मटकियाँ खाली कर दी और अब कह रहे हैं हमने जीवन में कुछ भी नहीं खाया हो तो युमनाजी रास्ता दे दें। गोपियों ने कहा चलो हमारा क्या जाता है, हम यमुना जी से कह कर देख लेते हैं। जब उन्होंने यमुना जी से कहा कि अगर दुर्वासा ऋषि जी ने पूरे जीवन भर कुछ भी नहीं खाया हो तो रास्ता दे दो। यह कहते ही यमुना जी ने रास्ता दे

दिया। गोपियाँ उस पार चली तो गईं, परन्तु यह सोचकर हैरान और परेशान थीं कि यमुना जी ने रास्ता दिया तो क्यों दिया। हमारे सामने ही तो ऋषि दुर्वासा जी ने खाना खाया। उनको यह बात बिल्कुल समझ में नहीं आई। सोच में पड़ गईं– यह कैसे हुआ, क्यों हुआ। आप भी तो सोच रहे होंगे कि यह हुआ तो कैसे हुआ, क्यों हुआ। इसी को समझने का प्रयास करते हैं।

इसका उत्तर जानने से पहले हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि हम वास्तव में हैं कौन। भगवान श्री कृष्ण जी ने गीता में कहा :–

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। 15.7।।

इस संसार में जो जीव बना हुआ है, वह वास्तव में मेरा ही सनातन अंश है अर्थात् आत्मा है। भगवान श्री कृष्ण स्वयं कह रहे हैं कि हम सब आत्मा हैं, ना कि जीव। हम जीव इसलिए बन गये क्योंकि हम प्रकृति में स्थित मन और पांचों इंद्रियों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। अर्थात इन्हें हम अपना मान लेते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह मान लेते हैं कि हम यह इंद्रियाँ हैं या मन है या शरीर हैं और यह मानते ही हम जीव बन जाते हैं, जबकि वास्तव में हम तो आत्मा है।

यह पाँच इन्द्रियाँ हैं– श्रोत्र, चक्षु और त्वचा को तथा रसना, घ्राण (नाक)।

ईश्वर अंस जीव अबिनासी।

चेतन अमल सहज सुख रासी।। 1।।

– उत्तरकांड, 7।117

आत्मा परमात्मा का अंश है; परन्तु प्रकृति के कार्य शरीर, इंद्रियाँ, प्राण, मन आदि के साथ अपनी एकता मानकर वह 'जीव' हो गया है –

'जीवभूतः'। उसका यह जीवपना बनावटी है, वास्तविक नहीं। नाटक में कोई पात्र बनने की तरह यह आत्मा जीवलोक में 'जीव' बनता है।

आइए अब यह जानने का प्रयास करते हैं कि यमुना जी ने रास्ता क्यों दे दिया जब गोपियों ने यह कहा कि अगर भगवान श्री कृष्ण अच्युत हैं, तो रास्ता दे दो–

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।। 3.27

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहङ्कार-विमूढ-आत्मा कर्ता अहम् इति मन्यते।।

सारे कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते है ; लेकिन अहंकारी, मूर्ख और अज्ञानी व्यक्ति यह समझता है कि ये सब काम मैं कर रहा हूँ अर्थात इन कार्यों का कर्ता मैं हूँ – ऐसा मान लेता है। प्रकृति के गुण क्या है – पांच महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा), पाँच ज्ञानेन्द्रिय (श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र और घ्राण), पाँच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध), मन, बुद्धि और अहंकार।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।

गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।। 3/28

तत्त्ववित् तु महाबाहो गुण-कर्म-विभागयोः।

गुणाः गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते।।

परन्तु हे महाबाहो ! गुण विभाग (पाँच महाभूत, पाँच कर्मेन्द्रियाँ आदि, आदि) और कर्म विभाग (इन गुणों का एक– दूसरे के साथ व्यवहार करना/ वर्ताव करना, पारस्परिक चेष्टा करना, आपस में क्रिया करना– यह सब 'कर्म विभाग ' है।) तत्व से जानने का अर्थ यह है कि ऊपर बताए गए " गुण विभाग " और " कर्म विभाग " प्रकृति के कार्य हैं, आत्मा के नहीं। जो व्यक्ति यह जानता है और मानता है कि गुण विभाग और कर्म विभाग प्रकृति के ही कार्य हैं, आत्मा के नहीं, उसके लिए सारे–गुण गुणों में ही बर्तते हैं और ऐसा मानकर वह व्यक्ति किसी भी कर्म – बंधन में नहीं बन्धता, किसी भी कर्म में आसक्त नहीं होता।

परन्तु हे महाबाहो ! गुण और कर्म के विभाग के सत्य (तत्त्व) को जानने वाला ज्ञानी पुरुष यह जानकर कि " गुण गुणों में बर्तते हैं " (कर्म में) आसक्त नहीं होता ।

एक उदाहरण–

एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति को गाली दी। और दूसरे व्यक्ति ने पहले व्यक्ति को चाँटा मारा। पहले व्यक्ति (शरीर गुण है) ने मुंह (गुण है) से गाली दी। दूसरे व्यक्ति ने कान (गुण है) से सुना, कान ने मन (गुण है) को बताया, मन ने शरीर (गुण है) को आज्ञा दी कि चाँटा मारो। इस उदाहरण से हमें पता चलता है कि सारे कार्य, सारे काम प्रकृति के गुण ही कर रहे हैं। आत्मा कोई भी कर्म नहीं कर रहा है, ना ही करता है।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।

यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति।। 13/30

प्रकृत्या एव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।

यः पश्यति तथा आत्मानम् अकर्तारम् सः पश्यति।।

जो व्यक्ति यह देखता है कि सारे कर्म प्रकृति के द्वारा ही किए जाते हैं (ऐसा मानता है) और यह भी जानता है कि आत्मा कुछ नहीं करता (आत्मा अकर्ता है), वह व्यक्ति ही वास्तव में/ यथार्थ में देखता है।

भगवान श्री कृष्ण तो परमात्मा है और दुर्वासा ऋषि जी आत्म– वेत्ता है (आत्मा है)। रास लीला, नृत्य करना, भोजन करना– यह सब प्रकृति के कार्य हैं, आत्मा/ परमात्मा के नहीं। आत्मा/ परमात्मा तो केवल द्रष्टा भाव से रहते हैं। सारे कार्य प्रकृति करती है। जब गोपियों ने यमुना जी से कहा कि अगर भगवान श्री कृष्ण अच्युत्य है या यह कहा यदि दुर्वासा ऋषि जी ने कभी कुछ ना खाया हो तो रास्ता दे दो, तो यमुना जी ने रास्ता दे दिया, क्योंकि यमुना जी को यह मालूम था कि भगवान श्री कृष्ण तो परमात्मा है जो केवल द्रष्टा भाव से ही रहते हैं कुछ कार्य नहीं

करते । उसी प्रकार से ऋषि दुर्वासा जी आत्म–तत्व हैं और आत्म कुछ भी नहीं करता, केवल द्रष्टा भाव से रहता है, इसलिए रास्ता दे दिया।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मदभावं सोऽधिगच्छति।। 14.19 गीता
न अन्यम् गुणेभ्यः कर्तारम् यदा द्रष्टा अनुपश्यति।
गुणेभ्यः च परम् वेत्ति मत्-भावम् सः अधिगच्छति।।

जिस समय द्रष्टा पुरुष (ज्ञानी होकर) कार्य, करण और विषयों के आकार में परिणत हुए गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को (भी) कर्ता नहीं देखता है ? अर्थात् यही देखता है कि समस्त अवस्थाओं में स्थित हुए गुण ही, समस्त कर्मों के कर्ता हैं तथा गुणों के व्यापार के साक्षी रूप आत्मा को गुणों से परे जानता है ? तब वह द्रष्टा मेरे भाव को प्राप्त होता है। ।14.19।।

जब द्रष्टा (साधक) पुरुष तीनों गुणों के अतिरिक्त किसी अन्य को कर्ता नहीं देखता, अर्थात् नहीं समझता है और तीनों गुणों से परे मेरे तत्व को जानता है, तब वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

ध्यानयोग एवं आत्मसाक्षात्कार

श्री सूरजप्रकाश शर्मा

ध्यानयोग समाधि के द्वारा ही आत्मसाक्षात्कार होता है। इस पर शास्त्र लिखते हैं :-

नचक्षुषागृह्यते नापिवाचा

नान्यैर्देवैस्तपसाकर्मणावा।

ज्ञानप्रसादे न विशुद्धसत्त्व स्तत-

स्तुतंपश्यतेनिष्कलंध्यायमानः।।

मु. 3 ।। खण्ड 1।। 7।।

सूक्ष्मतर आत्मा चक्षु इन्द्रिय से प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, वाक्य, श्रोत्र आदि इन्द्रियों और चान्द्रायण आदि तप करके व अग्निहोत्र आदि कर्म करके भी प्रत्यक्ष नहीं होता। तप व कर्म चित्त शुद्धि द्वारा आत्म प्रत्यक्ष के साधन हैं। अत: केवल तप व कर्मों को करके आत्म प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। ज्ञानरूप सत्त्वगुण की निर्मलता करके, रजोतमोगुण की निवृत्ति कर विशुद्ध अन्त:करण वाला पुरुष आत्मप्रत्यक्ष के योग्य होता है। उस आत्मप्रत्यक्ष की योग्यता से अनन्तर ध्यान करता हुआ पुरुष उस निरवयव आत्मा को प्रत्यक्ष करता है।

महर्षि आश्वलाय ने ब्रह्माजी को कहा कि हे भगवन्! ब्रह्म विद्या को कहो, उस को ब्रह्मा जी इस प्रकार कहने लगे कि :-

तस्मैसहोबाच पितामहश्च श्रद्धाभक्ति ध्यानयोगादवै हि।।

– कै. ख. 1 ।। 2।।

श्रद्धा भक्ति के सहित ध्यानयोग से " ब्रह्म–साक्षात्कार " ब्रह्म विद्या प्राप्त होती है।

यजुर्वेद की कठउपनिषद में यमराज जी नचिकेता को इस प्रकार कहते हैं :-

तंदुर्दशं गूढमनुप्रविष्टं,

गह्वरेष्ठं पुराणम्।

अध्यात्मयोगाधिगमेनदेवं,

मत्त्वाधीरोहर्ष शोकोजहाति।।

इन मंत्र पर शंकर भाष्य–

विषयेभ्यः प्रतिसंहृत्य चेतसः आत्मनि समाधानमध्यात्मयोगस्तस्याधिगमस्तेन मत्त्वा देवमात्मनं धीरोधीमान् हर्षशोका वात्मन उत्कर्षापकर्षयो रभावाज्जहाति।।

भाष्य पर गोपालेन्द्र यती की टीका–

अत्रधीरो बुद्धिमानिति श्रवणमनन सत्त्वमुच्यते अध्यात्म योगशब्देन निदि-ध्यासनमुच्यते मत्त्वेति साक्षात्कार उच्यते।

टीका व भाष्य के सहित उपनिषद–मंत्र का अर्थ– यमराज कहते हैं कि– हे नचिकेत: देह से भिन्न जो आत्मा तुम ने पूछा है, वह आत्मा दुर्दर्श है क्योंकि शब्द, स्पर्श रूप रस आदि विषयकार वृत्तियों से प्रछन्न है। जीवों की बुद्धि रूप गुहा में स्थित है दु:ख से साधनों के कष्ट से प्रत्यक्ष होता है जिसको ऐसे सनातन आत्मदेव को ' धीमान ' श्रवन मनन रूप सांख्य वाला विवेकी पुरुष आत्मा में समाधि को प्राप्ति कर आत्मदेव को साक्षात् करके हर्ष शोक से रहित होता है।

महर्षि गोतम का न्याय शास्त्र भी इस प्रकार बताता है कि –

समाधि विशेषाभ्यासात्।

– अं. 4 ।। आह्निक 2 ।। सूत्र 38 ।।

अर्थ– समाधि विशेष के अभ्यास से आत्म तत्व का साक्षात्कार होता है।

देखिये याज्ञवल्क्यस्मृति–

इज्याचारदमाहिंसा,

दानस्वाध्यायकर्मणाम्।

अयन्तु परमोधर्मो

यद्योगेनात्मदर्शनम्।।

अर्थ– यज्ञ, स्नानादि आचार, इन्द्रियों का निरोध, अहिंसा, दान, वेदपाठ इत्यादि धर्म कर्म यह परम धर्म है जो योग कर आत्मसाक्षात्कार करना है।

अब देखिए मनु स्मृति–

प्रियेषुस्वेपु सुकृतम-

प्रियेषु च दुष्कृतम्।

विसृज्यध्यानयोगेन,

ब्रह्माभ्येतिसनातनम्।।

– अ. 6 ।। 76 ।।

अपने हितकारी जनों में पुण्य को और अहितकारी जनों में पाप को फेंक कर ध्यानयोग कर सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है, अर्थात् हितकारीजन हितकर्म कर पुण्य भागी, द्वेषी जन द्वेषकर्म कर पाप भागी होते हैं, सनातन ब्रह्म की प्राप्ति ध्यानयोग करके होती है।

योग वासिष्ठ–

वासनाक्षयविज्ञान, मनोनाश महामते।

समकालंचिराभ्यस्ता, भवन्तिफलदामुने।।
एकैक शोनिषेध्यन्ते, यद्येतेचिरमप्यलम्।
तन्नसिद्धिं प्रयच्छन्ति, मन्त्राः संकीलिताइव।।

अनुकूल प्रतिकूल पदार्थों के ज्ञान से जो उन पदार्थों के संस्कार चित में उत्पन्न होते हैं। उन संस्कारों से फिर उन पदार्थों की स्मृतियाँ व इच्छा उत्पन्न होती है। वह संस्कार यहाँ वासना का अर्थ है। उन संस्कारों का तिरोभाव होना क्षय शब्द का अर्थ है। स्मृति आदि वृत्तियों के उत्पादन में असमर्थता ही संस्कारों का तिरोभाव है क्योंकि जब तक चित्त रहे तब तक संस्कारों का अत्यन्त लय नहीं हो सकता, किन्तु तिरोभूत हुए असंख्य संस्कार चित्त में बने रहते हैं। जो स्मृति आदि वृत्तियों के उत्पादन में समर्थ न रहें, वह तिरोभूत संस्कार कहलाते हैं। ऐसा अनात्मपदार्थों के संस्कारों का तिरोभाव वासनाक्षय का अर्थ है।

निरवयव आत्मकार वृत्ति विज्ञान व तत्त्व ज्ञान का अर्थ है। अनात्माकार वृत्तियों का निरोध मनोनाश का अर्थ है।

वसिष्ठ जी राम जी से कहते हैं :–

हे वीतराग महामते राम जी– तत्त्वज्ञान, मनोनाश, वासनाक्षय यह तीनों एककाल में इक्कठे चिरंकाल अभ्यास करे हुए आत्मसाक्षात्कार द्वारा मोक्षफल के देने वाले होते हैं। यदि एक एक का अलग अलग चिरकाल का भी अभ्यास करें अर्थात् कदाचित आत्माकार वृत्तियों का प्रवाहरूप तत्त्वज्ञान का अभ्यास करें और मनोनाश, वासनाक्षय का अभ्यास नहीं करें, फिर: कदाचित अनात्मकार वृत्तियों का निरोध रूप मनोनश का अभ्यास करें, वासनाक्षय और तत्त्वज्ञान का अभ्यास नहीं करें, पुन: कदाचित अनात्म पदार्थों के संस्कारों का तिरोभाव रूप वासनाक्षय का अभ्यास करें और तत्त्वज्ञान मनोनाश का अभ्यास नहीं करें।

इस प्रकार भिन्न–भिन्न काल में एक– एक का अलग – अलग अभ्यास करें, तो यह आत्मसाक्षात्कार व मोक्षरूप फल को नहीं देते, जैसे मूर्छा, मरण आदि दोषों से प्रतिबद्ध मंत्र फल को नहीं देते।

अनात्मकार वृत्तियों का निरोधरूप मनोनाश के सहित आत्माकार वृत्तियों का प्रवाहरूप तत्त्वज्ञान के अभ्यास करने से अनात्मपदार्थों के संस्कारों का तिरोभावरूप वासना क्षय भी साथ होता रहता है। इस प्रकार तत्त्वज्ञान, मनोनाश, वासनाक्षय का एककाल में इक्कठा अभ्यास होता है एवं इन तीनों का इक्कठा चिरकाल अभ्यास करने से आत्मप्रत्यक्ष व मोक्षरूप फल होता है।

अनात्माकार वृत्तियों के निरोधरूप मनोनाश के सहित आत्मकार वृत्तियों का प्रवाहरूप तत्त्वज्ञान का अभ्यास ही योगाभ्यास है उस के बिना नहीं। किन्तु उक्त योगाभ्यास से ही आत्मसाक्षात्कार व मोक्षफल सुलभ है। वसिष्ठ जी कहते हैं।

श्रद्धा भक्ति ध्यानयोगान्मुमुक्षोर्मुक्त-
हेतून् पक्ति साक्षाच्छ्रुतेर्गी : ।
– विवेक चूड़ामणि ।। 46 ।।

मुमुक्ष के लिए श्रद्धाभक्ति ध्यानयोग यह मुक्ति के हेतु है वेदवाणी साक्षात् कह रही है।

ध्यानावस्थिततद्गतेनमनसा

पश्यन्तियंयोगिनः।

—भगवद्गीता

परमात्मा के ध्यान में स्थित मन करके योगीजन जिस आत्मदेव को प्रत्यक्ष करते हैं।

सर्वभूतस्थमात्मानं,

सर्वभूतानिचात्मनि।

ईक्षतेयोगयुक्तात्मा,

सर्वत्रसमदर्शनः।।

– अं. 6/26/गीता

योग से युक्त है अन्तःकरण जिसका वह योगयुक्तात्मा कहलाता है, जिसका कदाचित भी परिणाम नहीं किन्तु सर्वदा ' सम, समान रहे ऐसा परमात्मा यहाँ समपद का अर्थ है, ऐसे सम परमात्मा का ' दर्शन, साक्षात्कार होता है जिससे वह समदर्शनः व समदर्शी कहलाता है। ऐसा सर्वत्र ' समदर्शी, परमात्मदर्शी योगयुक्त पुरुष ब्रह्मा आदि पिपीलिकाआदि सब भूतों में स्थिति आत्मा को तथा आत्मा में सब भूतों को प्रत्यक्ष करता है।

इस प्रकार उक्त प्रमाणों के द्वारा सिद्ध हो चुका कि योग के बिना आत्मसाक्षात्कार नहीं हो सकता। समाधि योग के बिना आत्मसाक्षात्कार नहीं हो सकता। अब और प्रबल प्रमाण दिखलाता हूँ।

नाविरतोदुश्चरिता,

त्राशान्तोनासमाहितः।

नाशान्तमानसोवापि

प्रज्ञानेनैमाप्नुयात।।

– क. उप. 1 अ. 1 ।। व. 2 ।। 24

जो पुरुष पाप कर्म से निवृत नहीं हुआ, व इन्द्रियों की चंचलता से शान्त नहीं है, वह ' असमाहित है, समाधि अवस्था को ' प्राप्त नहीं है, व समाहित हुआ भी सिद्धियों की कामना वाला है, वह मनुष्य इस आत्मा को प्राप्त नहीं हो सकता, किन्तु पापों से निवृत्त शान्त इन्द्रिय सिद्धियों की कामना से रहित समाहित हुआ पुरुष आत्मा को प्राप्त हो सकता है।

स्वयंवेद्यंचतद्ब्रह्म,

कुमारी स्त्रीसुखंयथा।

अयोगी नैव जानाति,

जात्यन्धोहियथाघटम्।।

स्वयं जानने योग्य वह ब्रह्म है जैसे कुमारी स्त्री का सुख स्वयं ही जाना जाता है, अयोगी पुरुष ब्रह्म को नहीं जान सकता, जैसे जन्मान्ध पुरुष नीले पीले घट को नहीं जान सकता।

यह बिल्कुल निश्चय व सिद्ध सिद्धान्त है कि योग के बिना परमगति कदापि नहीं प्राप्त होती है।

नतुयोगमृवेशक्या,

प्राप्तुं सापरमागतिः।

अवबन्धोहिबुद्धस्य,

कर्मभिर्नोपपद्यते।।

–शान्ति पर्व अ. 331 ।। 52 ।।

योग के बिना वह परमपति प्राप्त नही हो सकती, जीवन्मुक्ति विद्वान् को कर्मो का बन्धन नहीं होता।

योगमेकंविहायाय

मानन्दात्मामहेश्वरः।

नैववाचानमनसा

प्राप्तुं शक्योनचक्षुषा।।

– आत्मपुराण अ. 6 ।। 723 ।।

आनन्दकदरूप महेश्वर परमात्मा महाप्रभु एक योग के बिना, न वाक्यों से प्रत्यक्ष हो सका है, न मन से अर्थात् न श्रवन से और न ही चक्षुओं द्वारा प्रत्यक्ष होता है।

निर्विकल्पकसमाधिनास्फुटम्

ब्रह्मतत्त्वमवगभ्यतेध्रुवम्।

नान्यथाचलतयामनोगतेः

प्रत्ययान्तरविमिश्रितं भवेत्।।

– विवेक चूड़ामणि ।। 365 ।।

निर्विकल्प समाधि द्वारा ब्रह्म तत्त्व स्फुट प्रत्यक्ष किया जाता है।" अन्यथान " निर्विकल्प समाधि के बिना प्रत्यक्ष नहीं होता क्योंकि व्युत्थान अवस्था में मन की दशा को चंचल होकर अनात्माकार वृत्तियों से मिश्रित मन होता है।

आचक्ष्वशृणुवातात

नाना शास्त्राणयनेकशः।

तथापितवनस्वास्थ्यं

सर्वविस्मरणदृते।।

– (अष्टावक्र गीता) ।। प्र. 16 ।। 1 ।।

हे तात् शिष्य– नाना शास्त्रों को अनेक प्रकास से तुम कथन कर या श्रवण करे तो भी सब के विस्मरण के बिना अर्थात् निर्विकल्प (असंप्रज्ञात समाधि) के बिना तुम्हारा मोक्ष नहीं होगा।

हरोयद्युपदेष्टाते

हरिः कमलजोपिवा।

तथा पिनतवस्वास्थ्यं

सर्वविस्मरणद्दते।।

– (अष्टावक्र गीता) ।।

यदि महादेव भी तेरा उपदेष्टा हो, या विष्णु या ब्रह्मा भी तेरा उपदेष्टा हो तो भी " सर्व के विस्मरण के बिना " असम्प्रज्ञात समाधि के बिना तुम्हारा मोक्ष नहीं होगा।

सर्व का विस्मरण असम्प्रज्ञात समाधि अवस्था में ही होता है क्योंकि सुषुप्ति अवस्था में भी अज्ञान विषयक तमोगुण विषयक वृत्ति ज्ञान होता ही है।

माया का आवरण हटा दे

(श्री बालकृष्ण जी गर्ग)

मैं अनाम हूँ, तू है नामी।
मैं हूँ सेवक, तू है स्वामी।
दीन-दुखी मैं, दीनबंधु तू।
दयापात्र मैं, दयासिन्धु तू।
भीतिग्रस्त मैं, तू भयहारी।
तिमिरयुक्त मैं, तू तिमिरारी।।
ज्ञानरूप तू, मैं अज्ञानी।
लहररूप मैं, तू है पानी।।
याचक हूँ मैं, तू है दाता।
ज्ञानदृष्टि दे, हे जगत्राता।।
माया का आवरण हटा दे।
'मैं-तू' का यह भेद मिटा दे।।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

सिद्ध-योगियों का पावन-जीवन पथ-प्रदीप है

श्री अलगूराय जी शास्त्री

वैदिक संस्कृति विश्व के मानव-इतिहास में सर्व प्राचीन है। व्यक्तिगत मानव-जीवन के लिए जैसे एक मनुष्य का शरीर मन, चरित्र, स्वभाव, आचरण एक मूल्य रखता है, उसी प्रकार एक राष्ट्र और एक जाति के सामूहिक जीवन के साथ उसकी संस्कृति का सम्बन्ध है।

इस दृष्टि से भारत की आर्य जाति का जो सांस्कृतिक इतिहास है, वह गौरवपूर्ण है। मनुष्य-जीवन का ऐहिक मूल क्या हो, इस पर जो प्रकाश इस संस्कृति में देखा जाता है, वह अपूर्व सौन्दर्यमय है। सोलह संस्कारों से निखर कर उस जीवन को समुज्जवल होना पड़ता है। गर्भाधान से लेकर मरणपर्यन्त किस जाति ने कभी कल्पना की कि एक मनुष्य को संस्कृत होना पड़ेगा-"**वाचं ते शुन्धामि**" आदि के वचन से आरंभ कर '**चरित्राणि च ते शुन्धामि**' का वचन हमें बताता है कि मन, वाणी, काया चरित्र सबको शुद्ध पवित्र बनाना होगा। इस प्रकार का कायिक, वाचिक, चारित्रिक सुदृढ़ जीवन "**स्थिरैरंगै घुष्टुवाँ" देवहितः यदायुः**" समस्त सुदृढ़ अंगों सहित आयु देव-कार्य के लिए हो-अपने व्यक्तिगत आमोद-प्रमोद के लिए न हो। जीवन व्यक्तिगत सुन्दर, दृढ़, पवित्र हो, परन्तु वह चरितार्थ हो लोक-कल्याण में। इस प्रकार उत्कृष्ट व्यष्टि में परमोत्कृष्ट समष्ठि का उदय-श्रेष्ठ आर्यजनों में से उदय हो, ऐसे समाज की कल्पना हमारे सामने उपस्थित करता है, समाज का प्रत्येक व्यक्ति श्रेष्ठ हो, फलतः समाज परम श्रेष्ठ हो, यह झांकी है।

व्यक्ति और समाज का यह सम्बन्ध इस संस्कृति द्वारा हमें प्राप्त होता है। समाज में "**न अस्माकं ज्येष्ठासो न कनिष्ठासः**" का चित्र हमें उसके पश्चात् मिलता है-इस मानव-समाज में, विश्व भर में न कोई छोटा है न बड़ा हम सब मनुष्य भाई-बहिन हैं, परस्पर समान हैं। हम सबका पिता और माता अदिति है। इस प्रकार ऊँच-नीच, जाति-पांति के भेदों के लिए, रंग-रूप की पृथकता के लिए इस संस्कृति में स्थान नहीं। इसमें देश और जाति की ऊँचता-नीचता और भेदों को भी अवकाश नहीं। विश्व-बन्धुत्व का शाश्वत सन्देश वैदिक संस्कृति में ही अमन्द ज्योति से प्राप्त होता है। मानव में समानता का विमल सन्देश यहीं निर्भ्रान्त रूप में दिखाई पड़ता है। "माँ प्रति माँ प्रति इति समस्ते न तत्साम्" यहीं गाया गया है-मेरे लिए भी, मेरे लिए भी यह जहाँ सब कह सकें वहीं साम्यावस्था है, यही अभिप्रेत है, यह नहीं कि कुछ के लिए सुविधा कुछ के लिए असुविधा कुछ सम्मानित कुछ असम्मानित। मानव मात्र में समानता को श्रेयस्कर बनाकर इस संस्कृति ने कलह का द्वार बन्द किया है।

"**सहृदयं संमनस्यं, अविद्वेषं कृणिमो वः" अन्योनां अभि-हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या**"-हे मनुष्यो! मैंने तुम्हें समान मन वाला, समान हृदय वाला बनाया, तुम एक दूसरे के प्रति विद्वेष मत रखो, एक की ओर दूसरे को लपकना और बढ़ना चाहिए जैसे सद्यः जात लवारे की ओर नव-प्रसूता जननी गौ बढ़ती है।

विश्व के मानव को यह उपदेश देकर वैदिक संस्कृति ने विश्व–शान्ति का जो चित्र उपस्थित किया है वह अप्रतिम है। इस संस्कृति से जीवन के सामंजस्य का उपदेश मिलता है। चारवाक् मत ऐहिक जीवन को सुखमय बनाकर इतिश्री कर देता है। बौद्ध, जैन एवं इसी प्रकार के वैराग्य प्रधान विचार विश्व की नश्वरता को सामने रखकर उसके मिथ्यात्व को प्रमुखता देकर, ऐहिक जीवन को नीरस बनाते हैं। वैदिक संस्कृति अविद्या के द्वारा–विविध वैज्ञानिक सांसारिक विद्याओं के द्वारा जीवनयापन को ऐश्वर्यमय अभ्युदय बनाकर अन्त में विद्या द्वारा–ब्रह्म विद्या द्वारा, आत्म–ज्ञान द्वारा कैवल्य प्राप्ति का मार्ग बताती है। **''शैशवे अभ्यस्त विद्यानां यौवने विषयैषिणां वार्धके मुनिवृत्तीनां, योगेनान्ते ननुत्यजाम्''** का आदर्श सामने रखती है। बचपन में विद्या–जवानी में विषयादि सेवन से प्रजोत्पादन तीसरी अवस्था में साधना और अन्त में योग द्वारा देह–त्याग से मोक्ष'' अर्थात् **'यस्तद्वेदोमयँ सह'** लोक–परलोक दोनों की साधना 'घर कीन्हें घर जात है, घर छोड़े घर जाय तुलसी घर वन बीच ही राम प्रेम पुर छाय'' घर छोड़कर न घर रखकर किन्तु दोनों के सामंजस्य से परम फल मिलता है। **''यतोऽभ्युदय निः श्रेयस सिद्धि''** जिससें सांसारिक अभ्युदय प्राप्त हो और अन्त में मोक्ष मिले ऐसे ही सामंजस्यमय जीवन की झांकी वैदिक संस्कृति की देन है। फलतः इसके इतिहास में वीर–वीराङ्गनाओं की कहानियाँ भरी पड़ी हैं। वायु में उड़ने वाले वायुयानों की कहानियाँ भरी पड़ी है। शरीर को रोगमुक्त करने वाले शास्त्रों के निर्माण की विधियाँ, युद्धों के इतिहास भरे पड़े हैं। साथ ही सिद्धायोगियों का पावन–जीवन मानव के लिए पथ–प्रदीप बना पड़ा है।

हम इस संस्कृति के असंख्यात स्वरूप का अध्ययन करें, उसका गुण गायें और जीवन को लोक–सेवा में लगायें।

मुझे आपसे ईर्षा है।

भगवान आप को जैसी भी स्थिति में रक्खें, उसी में आपको सन्तुष्ट रहना चाहिए। आप मुझे कितना भी अधिक सुखी समझें पर मैं आपकी इस रुग्णावस्था से ईर्षा ही करता हूँ। क्योंकि दुःख के समय भगवान के दर्शन विशेष रूप में होते हैं। भाई भगवान साथ हों तो भारी-से-भारी दुःख क्लेश को भी भोगते हुए जो आनन्द प्राप्त होता है, उसके सामने स्वर्ग का सुख कुछ भी महत्व नहीं रखता और भगवान के बिना महान-से-महान सुख भी नारकीय यंत्रणा देने वाला ही होता है। भगवान के लिए जो कुछ भी दुःख भोगना पड़े उसमें एक विलक्षण सुखानुभूति होती है।

– सन्त लारेन्स

केवल योग ही एक मार्ग है

एक कोठे में दो सौ मन गेहूँ डाल दिये हैं तत्पश्चात् छः सौ मन चना डाल दिये। अब प्रकट में इन आँखो से गेहूँ नहीं दीख सकते, यावत् कि उनके ऊपर से चनों को न हटाया जावे। इसी प्रकार प्राचीन संस्कारों को जानने के लिए मन का नवीन संस्कारों से पृथक् करने की आवश्यकता रहती है। जिसका साधना सिवाय योग के दूसरा नहीं है।

– स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/21-23 NOVEMBER 2022

प्रेषण वातायन :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धपीठ योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एटमादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK POST

श्री/सुश्री _____

_____

_____

संरक्षक – योगर्षि स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा के लिए राष्ट्रीय प्रकाशन एवं प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-3 से मुद्रित होकर श्री सिद्धपीठ योग प्रशिक्षण केन्द्र सैंवाई (एटमादपुर) आगरा (उ.प्र.) से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तृणां वरद पदमं मङ्गलमसि।।

हे कामनाशक ! श्मशानों में सानन्द खेलना, भूत प्रेतादि सदा साथी संगी, चिता में जल मुर्दों की राख का लेपन मनुष्यों की खोपड़ियों की बनी माला तथा मृग चर्मादि वस्त्र इस प्रकार आपके व्यामङ्ग (चरित्र) अमङ्गलजनक भले ही रहे फिर भी हे वाञ्छित वर देने वाले शम्भो ! स्मरण करने वाले भक्तों को लिए तो आप मंगल रूप ही हैं।